Bohal Shodh Manjusha जून 2023 डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115
June 2023
Vol.-17, Issue-6(3)

Impact Factor
7.523

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

इण्डोनेशिया सेमिनार विशेषांक

विशेषांक सम्पादक : डॉ. विकास शर्मा

विशेषांक सह-सम्पादक : डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी

सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 17 **ISSUE-6(1)** **(जून 2023)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. विकास शर्मा

सह सम्पादक :
डॉ. चन्द्रेश कुमार छतलानी
सहायक आचार्य, *जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर*

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के **Arial, Times New Roman** में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

जून 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ0 विकास	09–09
2.	हिन्दी लोक साहित्य में संस्कृति, समाज एवं दर्शन " छतीसगढ़ी लोक गीतों के संदर्भ में "	डॉ0 अनिता सिंह	10–15
3.	आत्म–आलोचना की सार्थकताः साहित्यिक विधा लघुकथा के संदर्भ में	डॉ0 चंद्रेश कुमार छतलानी	16–21
4.	भारत वर्ष एवं गोरक्ष नाथ युगीन परिस्थितियाँ	प्रा0 (डॉ0) गोविन्द कुमार टी0 वेकरिया	22–28
5.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यवसायिक पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन	प्रोफेसर मीना यादव	29–30
6.	21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में वर्तमान भारत की सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्थिति	मिर्जा मासुमे फातिमा	31–34
7.	भारत–इंडोएशिया : समृद्ध इतिहास एवम् नवीन भविष्य	डॉ0 पुनीत कुमार पण्डया	35–38
8.	Cover Page - How Drama Rehearsals Impact the Expression of Emotions in Children: A Study	Radhika Pendse, Dr. Sanyukta Thorat	39–49
9.	स्मृतियों में दान की अवधारणा एवं महत्व	डॉ0 रागिनी राय	50–56
10.	Cover Page - Women of Vijaynagara Empire – a forgotten story	Rajshree Kate, Dr. Sanyukta Thorat	57–63
11.	'साहित्य और संस्कृति : मानविय मूल्य के संदर्भ में'	डॉ. रविंद्रनाथ माधव पाटील	64–67
12.	शोध–पत्र – ''व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा, समाज और संस्कृति की भूमिका'' (भूमण्डलीकरण के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ0 साधना अग्रवाल	68–71

13.	रामचरित मानस का सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य	डॉ० शिवदयाल पटेल	72–78
14.	मैत्रीय पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ० शुभा बाजपेयी	79–85
15.	एक हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के सन्दर्भ में	डॉ० सुमन कौशिक	86–89
16.	अतीत की झलक : भारत का अंग इंडोनेशिया	सुमन कुमारी	90–94
17.	समकालीन कविताओं में मानवीय संवेदना	डॉ० सुप्रिया ई.	95–98
18.	भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में संबंध	डॉ० श्वेता शरण	99–102
19.	इंडोनेशिया में भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति के बढ़ते विकास में समस्या और समाधान भौगोलिक एक विश्लेषण	डॉ० वेदप्रकाश	103–109
21.	मधुबनी : बिहार की समृद्ध लोक कला एवं चित्रकला	डॉ० साधना द्विवेदी	110–115
22.	सनातन वैदिक संस्कृति में पर्यावरण	डॉ० उत्तम प्रकाश शर्मा	116–119
23.	स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन	प्रो० भूपेन्द्र कुमार पटेल	120–128

सम्पादक की कलम से.....

प्रिय पाठकों, मैं आपने सामरिक कर्तव्यों को निभाते हुए, इस संपादक की कलम से अपने सामरिक जीवन के उत्कर्ष की बात करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। यहाँ आपके साथ व्यापक चर्चा करने का एक मौका प्राप्त करते हुए, जिसमें हम आपके सामरिक जीवन के महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार–विमर्श करेंगे। विश्व एक बदलता हुआ स्थान है और सामरिक क्षेत्रों में भी हम बहुत सारे बदलाव देखते रहते हैं। गणराज्यों और आपातकालीन स्थितियों के बीच गतिशीलता बढ़ रही है और विश्व के अनेक देशों में शैन्य एवं गृहयुद्धों के परिणामस्वरूप व्यक्तियों, समुदायों और देशों के लिए नए और चुनौतीपूर्ण पहलुओं का सामना करना पड़ रहा है। इन परिस्थितियों में, सामरिक कर्मचारियों की संख्या और प्रामाणिकता का महत्व बढ़ रहा है। एक सामरिक कर्मचारी के रूप में, आप जोखिमों का सामना कर रहे हैं और अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं, वहाँ संगठन के विकास और सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देना अत्यंत महत्वपूर्ण है। आपकी सेवाएं देश की सुरक्षा, आपातकालीन प्रतिक्रियाओं, और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को मजबूती और स्थायित्व प्रदान करने में मदद करती हैं। सामरिक कर्मचारियों के लिए एक और चुनौती है तकनीकी प्रगति का सामरिक क्षेत्र में अनुपालन करना। डिजिटल युग के आगमन ने हमारे सामरिक तंत्रों को एक नई दिशा दी है, जिसमें कंप्यूटर नेटवर्क, साइबर सुरक्षा, और अन्य तकनीकी क्षेत्रों का उपयोग होता है। यह तकनीकी प्रगति न केवल आपके कार्य को अधिक सुगम बनाती है, बल्कि उसके साथ ही नए संकटों को भी आमंत्रित करती है। आपके नवीनतम ट्रेनिंग, अद्यतन, और सम्प्रेषण आपकी निपुणता को मजबूती देते हैं और आपको एक सुरक्षित और प्रभावी तरीके से समर्पित करते हैं। इसके अलावा, सामरिक कर्मचारी अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक ताकत को बनाए रखने के लिए व्यायाम, मनोरंजन और आत्म–सांयम के आदर्शों का पालन करने की आवश्यकता है।

शोधकर्ताओं का हम स्वागत करते हैं आपकी अपनी शोध पत्रिका बोहल शोध मंजूषा में अनेक विषयों पर महत्वपूर्ण शोध आलेखों का यह संग्रह आपको एक मंच प्रदान करता है, जहां हम नवीनतम शोध का प्रकाशन करते हैं और शोधकर्ताओं को अपने कार्य को विश्वस्तरीय रूप से प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करते हैं। शोध पत्रिका हमारे समाज और विज्ञान में नवीनतम शोध को प्रोत्साहना करती है। हम सभी जानते हैं कि शोध विज्ञान की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रगति का महत्वपूर्ण स्तम्भ है। यह नई विचारों की उत्पति, तकनीकी और विज्ञान के क्षेत्र में नवीनतम विकास और अनुसंधान के साझा करार के लिए आधारभूत है। हमारी शोध पत्रिका का उद्देश्य है अद्यतन शोध की प्रस्तुति करके वैज्ञानिक समुदाय को उच्चतम गुणवत्ता और विश्वस्तरीय प्रकाशन प्रदान करना। हम शोधकर्ताओं के लिए एक अवसर प्रदान करना चाहते हैं जहां वे अपने शोध परिणामों को व्यापक रूप से साझा कर सकें। हम उनके द्वारा निष्पक्षता, वैज्ञानिक नैतिकता, और शोध प्रबंधन के क्षेत्र में उत्कृष्टता के लिए मान्यता प्रदान करना चाहते हैं। बोहल शोध मजूषा पत्रिका में हम विभिन्न क्षेत्रों में नवीनतम शोध आलेखों का प्रकाशन करते हैं, जिनमें संगणना, जैविक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूविज्ञान, न्यूरोसाइंस, गणित, भौतिकी, राष्ट्रीय राजनीति, आर्थिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, और शिक्षा शामिल हैं। हम इन क्षेत्रों में शोध कर रहे विशेषज्ञों के आलोचनात्मक विमर्श, नए प्रोटोकॉल, उद्दीपना के माध्यम से सृजनशील विचारों और विज्ञानिक नवीनतमताओं को दर्शाते हैं। हमारे पाठकों के लिए, पत्रिका एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 10-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी लोक साहित्य में संस्कृति, समाज एवं दर्शन "छतीसगढ़ी लोक गीतों के संदर्भ में"

डॉ0 अनिता सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी),
डी.बी.एस. कॉलेज गोविंद नगर कानपुर

भारत के प्रत्येक प्रदेश की अपनी सांस्कृतिक–सामाजिक विशेषताएं हैं, जो मुख्यतः वहाँ के लोक– संगीत के माध्यम से व्यक्त होती हैं। परंपरा के प्रवाह में गतिशील लोक–संगीत से उस क्षेत्र विशेष की राष्ट्रीय पहचान बनती हैं। परंपरा और संस्कृति पर्यायवाची शब्द नहीं, है संस्कृति अधिक व्यापक अवधारणा है, परंपराएं उसकी अपेक्षाकृत दीर्घजीवी धाराएं और उपधाराएं होती हैं। परंपराएं किसी भी संस्कृति की बुनावट के लिए आवश्यक है, किंतु केवल उनसे ही पूरी संस्कृति को नहीं समझा जा सकता। परंपराएं जातीय स्मृति का एक अंग होती, हैं किंतु उसका चुनाव समाज स्वयं जीवन के बदलते संदर्भों और तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करता है। सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखना है तो लोक – संस्कृति के विभिन्न रूपों को पूर्ण मान्यता तथा इनके अध्ययन सर्वेक्षण तथा प्रस्तुति पर समाज का पूरा ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक है। डॉ0 सूर्य प्रसाद शुक्ल के शब्दों में कहा जाए तो–"यह वह मानव समाज है जो अपनी परंपरा जन्म आदि विश्वासों के प्रति आस्थावान है और संस्कृत की अजस्र धारा को युगो युगो से संरक्षण प्रदान कर रहा है"

भारतीय संस्कृति की वास्तविक झांकी इन लोकगीतों के माध्यम से देखने को मिलती है। महादेवी वर्मा ने लोकगीत की सहज स्थिति का उद्‌गम उद्‌घाटन इस प्रकार किया है–"सुख–दुख की अवस्था के चित्रण का माध्यम अश्रुपात दीर्घ निश्वास पुलक और मुस्कान आदि अनुभाविक आंगिक तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरूप धारण कर कंठ के द्वारा साकार हो उठती है तभी गीतों के स्वर फूटते हैं"

सामाजिक व्यवस्था, तीज, त्यौहार, रीति–रिवाज, खेती किसानी, राजनीतिक देश प्रेम और धार्मिक विडंबनाओं का सही मूल्यांकन इन लोकगीतों में मिलता है।

जब हम छत्तीसगढ़ी लोक गीतों की बात करते हैं तो छत्तीसगढ़ के जनजीवन में छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का अपार भंडार है। छत्तीसगढ़ के जीवन में होने वाले विभिन्न संस्कारों, उत्सवों, पर्वों, और ऋतुओ, के अवसर पर कलकंठ से यह गीत बरबस फूट पड़ते हैं।

शकुंतला वर्मा के शब्दों में "छत्तीसगढ़ी लोक गीतों की परंपरा इंसान के आदिम युग से चली आ रही है युगों की छाप उसके भावों पर पड़ी और वह अपने जीवन को ईमानदारी से अपनी बोलियों में प्रकाशित करता हुआ आज भी परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ चला आ रहा है उसने समय पर शोषण के विरुद्ध अपने गीतों में आवाज उठाई, अपने श्रम का परिहार गीतों के सहारे किया। नया उत्साह नई लगन गीतों द्वारा प्राप्त की

और इतना ही नहीं मन की छिपी हुई मीठी बातों के सुख और दुख को उन्हीं गीतों में ढाला। "लोक साहित्य का जनजीवन के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। यही कारण है कि यहां व्यक्ति की भावना अपने निष्कलुष रूप में अभिव्यक्त होती है। जहां के लोग प्रकृति के अधिक समीप होते हैं, वहां प्रत्येक प्राकृतिक व्यापार, ऋतु का प्रत्येक कंपन, उसके हृदय में अनेक भावांतर उपस्थित करता है, इसके साथ ही मानवीय अनुभूतियां भी। पर्याप्त तीव्रता के साथ, अपने आदिम स्वरूप में यहां अभिव्यक्त होती है इसीलिए लोक साहित्य लोक जीवन का अधिक साक्षात प्रतिबिंब है और उसे समाज का वास्तविक दर्पण माना जा सकता है।

कृष्ण देव उपाध्याय ने लिखा है–"लोक साहित्य को जन जीवन का दर्पण कहा जाए तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। लोकसाहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्व साधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं, उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गा–गा कर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मन बहलाव का अनन्य साधन है। समय–समय पर चलती हुई लोकोक्तियां और भाव भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है ऐसी अनुभूतियां पाई जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती। "डॉ. सत्येंद्र के वर्गीकरण के सिद्धान्त का अनुगमन करते हुए हम छत्तीसगढ़ी लोक गीतों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं–

1. संस्कार गीत
2. ऋतु गीत
3. पर्व गीत
4. जाति गीत
5. बाल गीत
6. अन्य गीत

संस्कार गीत के अंतर्गत सोहर स्त्रियों का गीत, एक ओर स्त्री अपनी कोख से शिशु को जन्म देती है तो दूसरी और वह अपने हृदय के सहज उदगारों को भी अभिव्यक्त करती है–

सासु मोरे गइन भभरत, ननद मोरे हांसत हो
ललना जेठानी मोरे गए मुंहमोर, जेठानी मोर गोतनिन हो
सासु देइन एक रुपैया, ननद एक मोहर हो
ललना जेठानी के कुछू नई जानव, जेठानी मोर गोतनिन हो।

विवाह गीत – विवाह गीत दो रूपों में दिखाई देते हैं वर पक्ष के द्वारा गाए जाने वाले गीतों में उत्साह और कन्या पक्ष के द्वारा गाए जाने वाले गीतों में विषाद के भावों की प्रबलता होती है। विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के विधि विधान में गाए जाने वाले गीतों में चूल माटी, तेलघची, बारात प्रस्थान, बरात स्वागत, गारी,टिकावन भांवर और विद्या के गीत प्रमुख हैं यह विदा के गीत प्रमुख हैं। ये गीत विविध विधि–विधानो के अनुकूल गाए जाते हैं। सुवासिने बारात की अगवानी करने को आगे बढ़ती हैं और यह गीत उनके मधुर कंठ से मुखरित हो उठता है–

बड़े–बड़े देवता रेंगत हे बरात, बरमा, महेस

लिली हसा घोडवा व में राम जी चघे हैं,

छत्तीसगढ़ प्रकृति का मनोरम स्थल है, अतः यहां सभी ऋतुओं का समान महत्व है। वैसे तो जीवन में ऋतुओं का महत्वपूर्ण स्थान है, तथापि जीवन की एकरसता में समरसता लाने का कार्य ऋतुएं ही करती हैं। उमड़ते घुमड़ते बादलों को देखकर यहां कवियों के कंठ से यह गीत स्वयं ही स्फुटित हो जाता है

अरे ओ आदर घटकत आवे
कौन खूटे बरिसल पानी
पूखे तो रुंधे उधे बदरी
बादर घटकते आवे
पछि में बरिसिले, पानी रे, बादर घटकते आवे
सरसरा चलथे बयारि रे, बादर घटकत आवे

लोकगीतों में बारहमासा गाए जाने का प्रचलन अत्यंत प्राचीन है लोकगीत कारों की इस प्रिय विधा का महान कवियों ने अनुसरण भी किया है –

सावन महीना विरही रोवे जिनके पिया गए परदेस
भादों महिना रँड़िया रोवे, कुकुर रोवे लगे कुवाँर
कातिक महिना गहिरा रोवे, सुमर सुमर पुरखन के नाम
अगहन महिना खेखर्री रोवे, खाँसत खाँसत करे बिहान
पार परोसिन गारी देवँय, हत बुढ़वा तोर जौहर लाग
फागुन महिना डिंड़वा रोवे, गलियन में रंग गुलाल
चौत महिना ठड़गा रोवे, बाँझा रोवे लगे बैसाख
जेठ असाढ़ तो छँड़ई रोवे, जेकर डउका देइस निकार।।

पर्वगीत– विश्व में कोई ऐसी जाति या कोई ऐसा समाज नहीं होगा, जो पर्व या उत्सव न मनाता हो और यह भी असंभव है कि ऐसे समय में गीत न गाए जाते हों। छत्तीसगढ़ की धर्म पारायण जनता अनेक देवी – देवताओं की पूजा करती है और उनकी पूजा – आराधना में यथाशक्ति कोई कसर नहीं रखती। आर्यों और अनार्यो के विविध देवताओं को मानते हुए जनजीवन इन्हें विविध पूजा – विधियों से प्रसन्न करता है।

लोकगीतों के माध्यम से
गौरी के गनपति भए, अंजनी के हनुमान रे।
कालिका के भैरव भए, कौसिल्या के लछमन राम रे ।।
गाय चरावे गहिरा भइया, भईस चरावे ठेठवार रे।
चारो कोती बहुत बोहावै, दूध दही के धार रे ।।

सुवागीत के माध्यम से छत्तीसगढ़ी नारी अपने जीवन की व्यथाओं को कहती हैं –

पँइया परत हों मैं चन्दा सुरूज के
मोला तिरिया जनम झनि दे ... सुवा रे
तिरिया जनम मोर अति कलपना रे

मोला तिरिया जनम झनि दे ... सुवा रे

होली गीत – फागुन पूर्णिमा के दिन होली का त्यौहार धूम – धाम से मनाया जाता है। होली के उल्लासमय वातावरण के मध्य फागगीत का गान उल्लेखनीय है। होली में गाए जाने वाले गीतों में राधा– कृष्ण के होली खेलने का वर्णन 'राधे बिन होली न होय, सहर में दे दे बुलौवा राधे को' से प्रारंभ होता है। इन्हीं गीतों के माध्यम से फागुन महाराज के पुनः पुनः आने का आह्वान किया जाता है ।

होली खेलन गये गिरधारी होली।
खेलन गये बनवारी,
काकर हाथ मां रंग कटोरा ।
काकर हाथ मां पिचकारी,
राधा के हाथ मां रंग कटोरा ।
कान्हा के हाथ मां पिचकारी,
होली खेलन गये बनवारी,

डंडा गीत – छत्तीसगढ़ी के पुरुष नृत्यगीतों में डंडागीत प्रमुख है। यह छत्तीसगढ़ का रासगीत है। गाँव के नवयुवक, चंदन, तिलक, फूलमाला और वस्त्राभूषण से सज धजकर निकलते हैं। डंडागीतों में राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं के प्रसंगों के साथ राम लक्ष्मण से संबंधित कथाओं का उद्धरण भी देखा जा सकता है। डंडा – नृत्य गीत का प्रारंभ देवी देवताओं की वंदना और गीत का अंत आशीर्वाद की निम्नलिखित पंक्तियों से होता है

जइसन तेंहर लिये दिये, तइसन देवो असीसो रे
का हरदी के बगबग ला का, परदेसी के संग रे भाई
बेटवन बेटवन घर भर तोर भरे, डेहरी लिखे परदेस रे भाई
लोहा के साँकर ला घुना तो खाये मनखे के कीने बिसवास रे भाई
तैं धन रहिबे मइन अपन घर, चंदा ला देबो असीसो रे भाई
बेटी बेटा के अउ रचबे बिहाबे, हमू ला नेवता बर जाबे रे भाई
ठाकुर जोहारे बर आयेन भाई, पाने सुपारी ला पायेन भाई
तुम धन बइठो रंगे महल में, रामे रामे सब लेहु रे भाई ।

जवाँरा गीत – चैत्र माह में पुरुषों के प्रधान पर्व के रूप में जॅवारा पर्व मनाया जाता है जिसमें देवी के पूजार्चन के बाद रात्रि को गीत गाने की प्रथा है। इन गीतों में देवी की प्रार्थना, स्तुति, पराक्रम तथा शोभा का यशोगान होता है। इन गीतों में देवी को अनेक प्रचलित नामों के अतिरिक्त अन्य आंचलिक नामों से संबोधित किया गया है। यथा – महामाई, भवानी, शीतला, जगतारन और माय। ये छत्तीसगढ़ की प्रमुख आराध्य देवियाँ हैं।

माता फूल गजरा गूँथव हो मालिन के देहरी
हो फूल गजरा
काहेन फूल के हार
काहेन फूल के तोर माथ मकुटिया
सोलहों सिंगार

चम्पा फूल के गजरा
चमेली फूल के हार
मोंगरा फूल के माथ मकुटिया सोलहों सिंगार।

बारहमासा के माध्यम से भी देवी के पराक्रम और महिमा का गुणगान दृष्टव्य है

कार्तिक महिना धरम के रे माय
तुलसी मां दियना जलाय हो माय
अगहन महिना अगम के रे
पूस में हनत तुसार हो माय
माघ महिना घन अमुवा मौरे
फागुन उड़थे गुलाल हो माय
चौत महिना घन हँसुवा फूलै
बैसाख मं घाम जनाय हो माय जेठ महिना लिख पतिया भेजंव
आवत लगिगे असाढ़ हो माय
सावन महिना रूम – झुम बरसे
भादों मं गहिरा गंभीर हो माय
कुआंर महिना भइगे नवमी दसहरा
धनु ध्वजा ल पांडो सभाय हो माय
जय जय बोलत हौं तुम्हार हो माय।

भजन गीत– छत्तीसगढ़ में निर्गुण सगुण, दोनों धाराओं के मतावलंबी हैं। अलग अलग धाराओं के लोग अपने इष्ट देवी – देवताओं की स्तुति अपने मत के अनुसार करते हैं। इनके अपने अलग – अलग भजन हैं। एक भजन देखिए

तन के नइये भरोसा, नई बाँचौ चोला ।
खटिया कहिथे सुन गोसैंयाँ, सब दिन सोथव मोला
एक दिन जब बेरा आही, उलटा लेगँव तोला
कपड़ा कहिथे सुन गोसैंया रोज पहिरथव मोला
एक दिन जब बेरा आही उल्टा लेगंव तोला
लकड़ी कहिथे सुन गोसैंया रोज जलाथव मोला
एक दिन जब बेरा आही मंय तो लेसँव तोला
साबर कहिथे सुन गौसैंया, रोज खनथव मोला
एक दिन जब बेरा आही मंय गड़ियाहूँ तोला ।

पंथी गीतों में जीवन को नश्वर तथा आत्मा को शाश्वत माना गया है, कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

माटी के काया, माटी के चोला,
के दिन रहिबे बतादे मोला

ये तन हावे मोर माटी के खेलवना हो
माटी के ओढ़ना, माटी के बिछौना हो
ये माटी के काया छोड़ जाही तोला ।

बालगीत

छत्तीसगढ़ में बालक – बालिकाओं के गीत भी बड़ी संख्या में प्रचलित हैं। बच्चे इन गीतों को खेलते समय गाते हैं। मनोरंजन हेतु बने हुए इन गीतों में कहीं कहीं बाल मनोविज्ञान की बातें भी कहीं गई हैं। बालगीतों में प्रमुख गीत – अटकन – वटकन, फुगड़ी, डाँड़ीपौहा, भौरा, कबड्डी, गेंड़ी आदि हैं। छत्तीसगढ़ी में प्राप्त प्रमुख बालगीतों के उदाहरण दृष्टव्य हैं–

अटकन – बटकन अटकन, दही चटाकन
लौहा लाटा बनके काँटा
तुहुर तुहर पानी आवे
सावन में करेला पाके
चल चल बहिनी गंगा जाबो
गंगा ले गोदावरी
पाका पाका आमा खाबो
आमा के डारा टूटगे
भरे कटोरा फूटगे ।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि छत्तीसगढ़ का लोक साहित्य अपने अंदर विविधता को समेटे हुए बड़े समृद्ध रूप में मिलता है जो आगामी पीढ़ी को दिशा निर्देश भी करता है। यहां के लोग स्वयं को राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़े रखे हैं। यहां के लोक गीत सर्वथा अप्रतिम और बेजोड़ हैं।

सदर्भ :–

1. छत्तीसगढ़ के लोक गीत – डॉ. सी.एल. ठाकुर
2. छत्तीसगढ की जनजातियां और उनकी धार्मिक जीवनी – डॉ. सुनील चन्द्र वर्मा
3. छत्तीसगढ का साहित्यिक इतिहास – डॉ. विद्यावती चन्द्र शेखर
4. बंजारा बोली भाषा एक अध्ययन – डॉ. मोहन लक्ष्मणराव चव्हाण
5. छत्तीसगढी भाषा और लोकसाहित्य – डॉ. बिहारीलाल साहू
6. छत्तीसगढी का उदविकास – डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा
7. छत्तीसगढी बोली, व्याकरण और कोश – डॉ. कांति कुमार
8. छत्तीसगढी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन – डॉ. शंकर शेष
9. छत्तीसगढी लोक जीवन और लोकसाहित्य का अध्ययन – शकुन्तला वर्मा
10. छत्तीसगढी लोक साहित्य का अध्ययन – डॉ. दयाशंकर शुक्ल
11. बोहल शोध मन्जूषा – डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
12. गीना शोध संगम – डॉ. रेखा सोनी

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 16-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आत्म–आलोचना की सार्थकताः साहित्यिक विधा लघुकथा के संदर्भ में

डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी, सहायक आचार्य
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

सारांश :–

दुर्बलता जानना मनुष्य के कई स्वभावों में से एक है। इस कार्य में लघुकथा लेखकों से उनकी स्वयं की एक रचना, जो उनके स्वयं के अनुसार लघुकथा के किसी न किसी (एक अथवा अधिक) पक्ष–पक्षों में कमजोर है और जिसे उसी (उन्हीं) दुर्बलता (दुर्बलताओं) की वजह से उसे कहीं प्रकाशित होने नहीं भेजा, को लेकर उस रचना के साथ रचनाकारों द्वारा ही से एक वक्तव्य के माध्यम से उस लघुकथा की दुर्बलताओं को उजागर करवाया गया है। इस कार्य का आधार यह है कि (कुछ अपवादों को छोड़कर) लगभग हर लघुकथाकार ने अपनी कोई न कोई रचना खुद ही निरस्त की है। वे रचनाएं कैसी हैं और लघुकथाकारों द्वारा उन्हें निरस्त क्यों किया गया, यह जानने की जिज्ञासा ही इस शोध का आधार बनी। इस कार्य का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि लघुकथा लेखन के समय किस तरह की ऐसी कमियां हैं, जो रह जाएं तो रचना को प्रकाशन हेतु नहीं भेजना चाहिये। इससे लेखकों के नए व्यवहार को भी देखा जा सकता है। इस कार्य में कुल 55 रचनाएं प्राप्त हुईं।

बीज शब्द : लघुकथा, दुर्बल लघुकथा, आत्म–आलोचना

1. परिचय

हमारे ब्रह्माण्ड के सबसे बड़े सृजनकर्ता ने इतने बड़े पिंडों का भी निर्माण किया है, जिनका आकार व भार गणित की किसी एक इकाई से व्यक्त किया ही नहीं जा सकता और इतने सूक्ष्म अणुओं का भी निर्माण किया है जिनकी सूक्ष्मता का अंदाज लगाना भी असंभव है। अपनी ही सृष्टि को स्वयं से ही बने प्राणियों द्वारा व्यक्त करने की अक्षमता को समझ कर ही उस सृजनकर्ता ने शायद हम इंसानों में वह बुद्धि दी, जिसके जरिए हम जितना जान पाते हैं उतना ही स्वयं के ज्ञान और विज्ञान को भी उन्नत कर लेते हैं। कम्प्यूटर की डेटा संग्रहण की क्षमता बिट्स और बाइट्स से लेकर आज टेरा–बाइट्स और टेरा–बाइट्स से योट्टा–बाइट्स तक का होना इसका एक उदाहरण हो सकता है। आने वाले समय में यह संग्रहण की क्षमता निःसंदेह इससे भी अधिक होगी। यदि इस बात को मानवीय विचारों के परिप्रेक्ष्य में सोचें तो किसी मानवीय विचार के किसी एक साहित्यिक विधा में पूरी तरह न दर्शा पाने पर अन्य विधाएं व उप–विधाएं अस्तित्व में आ सकती हैं। डेटा संग्रहण की क्षमता के समान ही भविष्य में भी न केवल विधाओं का परिष्करण होगा, बल्कि अन्य विधाएं भी मानवीय–वैचारिक शक्ति

से उत्पन्न होंगी। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कम्प्यूटर में जैसे–जैसे डेटा संग्रहण की क्षमता बढ़ रही है, इस कार्य के उपकरणों का आकार छोटा होता जा रहा है। किसी समय की बड़ी – बड़ी हार्ड डिस्क से अधिक क्षमतावान आज छोटी सी पेन–ड्राइव है। यह भी हमारे विकास का एक स्वरुप है, ताकि हमारी संग्रहण क्षमता तो बढ़े ही, साथ ही भार भी कम हो।

लघुकथा भी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही ऐसे विचारों को शब्द देने के लिए अस्तित्व में आई, जिन्हें अन्य किसी विधा में व्यक्त करना संभव नहीं था। यदि वे विधाएं उन विचारों को उपयुक्त तरीके से व्यक्त कर पातीं तो लघुकथा का जन्म ही नहीं होता।

यह विकास का क्रम आज का नहीं है, बल्कि वैदिक काल से विचारें तो सर्वप्रथम वेद कहे गए फिर वेदों का सार उपनिषदों में कहा गया और उपनिषदों का सार गीता में निहित है। केवल सार कह कर सब कुछ दर्शा देना गीता जैसे ग्रन्थ की सफलता है। इस क्रम से गद्य साहित्य की तुलना करें तो लघुकथा ने कहानी के सार को नहीं अपनाया बल्कि उससे स्वतन्त्र रही। रामेश्वर तिवारी ओ हेनरी, मुम्पासा और तुर्गनेव जैसे पश्चिमी लेखकों को लघुकथा का जन्मदाता मानते हैं, हालांकि साथ ही वे यह भी मानते हैं कि लघुकथा पश्चिमी पिताओं की अंगुली थामे चलना तो सीखी लेकिन स्वतंत्र हुई स्वयं का आधुनिक लघुकथा के नामकरण के बाद और इस स्वतंत्रता का श्रेय श्री तिवारी खलील जिब्रान को देते हैं (हिन्दी लघुकथाः सर्जना व समीक्षा, स. डॉ. सतीशराज पुष्करणा)। आज की लघुकथा बोधकथाओं, लोककथाओं, अवांतरणकथाओं, व्यंग्यकथाओं जैसी संक्षिप्त कथाओं से भिन्न है। यह गद्य–गीत, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि भी नहीं है। इसका मूल कारण आधुनिक मानवीय विचारों में से कुछ का इन व अन्य विधाओं में व्यक्त करने में सक्षम न हो पाना ही था।

2. लघुकथा के गुण

लघुकथा का शाब्दिक अर्थ लें तो, कथा अर्थात कहना और लघु अर्थात संक्षिप्त। यह कहा जा सकता है कि संक्षिप्त रूप में अपनी बात कहना ही लघुकथा का विधागत ध्येय है। लेकिन रचनाकर्म इस विधा की अन्य विशेषताओं को ध्यान में रख कर करें तो ही लेखकीय ध्येय और पाठकीय संतोष प्राप्त हो सकता है। इसके विपरीत पाठकीय ध्येय को ध्यान में रखकर यदि लेखकीय संतोष पाया जाए तो यह चातुर्यपूर्ण लेखन साहित्य पर एक दबाव होगा। साहित्यिक लेखक को पाठकीय ध्येय की बजाय मानवीय–हितों के अनुसार ही लेखन करना चाहिए। कम से कम शब्दों को लेकर अपनी बात स्पष्ट कह पाठकों को अनुभूति की अपेक्षाकृत अधिक घनी तीव्रता का अहसास कराने की क्षमता ही लघुकथा की सफलता है।

लघुकथा मनोरंजन नहीं करती बल्कि विचारों से टकराकर चेतना पर प्रहार करती है। मानसिक दृष्टि को तीक्ष्ण करती है और श्वासों में गहराई उत्पन्न करती है। राधेश्याम शर्मा कहते हैं कि, ''लघुकथा सर्जन में दो भयस्थान हैं। या तो चुटकुला बन जाता है या छोटी कहानी। वस्तु, भाषा, लाघव आदि में से किसी भी एक में गलती हो जाए तो लघुकथा बिगड़ जाती है।'' (कथासेतु, त्रिवेदी रमेश, लेखः वामन करावे विराटनी झाँखी, राधेश्याम शर्मा)

लघुता के अतिरिक्त लघुकथा में तीक्ष्णता, प्रभावोत्पादकता, संवेदना की अभिव्यक्ति, आधुनिकता–बोध, उद्देश्य, विषय, लाघवता व पल विशेष, कथानक, यथार्थ चित्रण, शिल्प, शैली, शीर्षक, पात्र, भाषा एवं संप्रेषण, संदेश–सामाजिक महत्व, न्यूनतम अतिशयोक्ति व सांकेतिकता जैसे गुण महत्वपूर्ण हैं।

3. आत्म–आलोचनाः क्या, क्यों व कैसे?

भवानी प्रसाद मिश्र की एक कविता है – बुनी हुई रस्सी। उसमें वे कविता की एक रस्सी से तुलना करते हुए कहते हैं कि,

"मगर कविता को कोई
खोले ऐसा उल्टा
तो साफ नहीं होंगे हमारे अनुभव"

इसका मतलब जो मैं समझा हूँ, वह यह कि कविता कहने वाले के अतिरिक्त जब कोई अन्य कविता के विश्लेषण का प्रयास करता है तो वह उस कवि के सारे अनुभवों को नहीं समझ सकता। यह बात केवल कविता ही नहीं बल्कि हर सृजन पर लागू होती है। लघुकथा को भी कोई समीक्षक तब तक नहीं खोल सकता, जब तक वह उस लघुकथा में मौजूद उन अनुभवों से न गुजरा हो, जिनसे रचनाकार गुजरा है। किसी लघुकथा के शास्त्रीय पक्ष को एक समीक्षक हो सकता है कि अधिक अच्छी तरह समझा सके, लेकिन भावों और अनुभव को हो सकता है कि लेखक ही बेहतर तरीके से बता सके।

वरिष्ठ लघुकथाकार बलराम अग्रवाल के अनुसार "यह अब नई पीढ़ी का ही दायित्व है कि वह अपने चिंतन और लेखन का आकलन स्वयं करे।" यह बात मेरे अनुसार भी सच है। जब बरसात होती है तो सूखी धरती को जल मिलता है और हरियाली आती है, हालांकि यह अधूरा सत्य है, बारिश के समय गड्ढों में पानी जमा भी हो जाता है, मिट्टी में भी मिश्रित जाता है। यह चर्चा का विषय न बने, इससे पहले ही उसे हटा लेना चाहिए। इसी प्रकार लघुकथाओं के आज के आन्दोलन में यदि कुछ लघुकथाएं उनके रचनाकारों को ही असहज कर रही हैं तो लघुकथाओं की ऐसी कच्ची फसलों को या तो पकाया जाए या फिर काट कर अन्य कामों में लिया जाए। उन्हें पकी फसल का दर्जा देकर लोहड़ी मनाने और नई फसल बो लेने का कार्य प्रारम्भ करने का अर्थ है – हमारे अपने आतंरिक संस्कारों की कमी। बहरहाल, यह सदैव ध्यान रहे कि सबसे बड़ा फिल्टर समय है।

समय अपना कार्य करता ही है, जो लघुकथाएं विधागत हैं अथवा उत्तम हैं, उन्हें योग्य मान अपने साथ भविष्य को ले जाता है और बाकी को पीछे छोड़ देता है। समय की तरह तो नहीं, किसी बड़े समीक्षक की तरह भी नहीं, एक पाठक और लेखक की तरह ही यदि हम स्वयं ही अपनी रचनाओं के लिए फिल्टर हो जाएं तो एक हद तक खरपतवार को उगने से रोक सकते हैं। अर्थात ''अपने चिंतन और लेखन का आकलन स्वयं करें।'' (बलराम अग्रवाल)।

एक रचनाकार और एक समीक्षक का विधागत चिंतन समान होते हुए भी दोनों की दृष्टि भिन्न होती है। एक रचनाकार जहां अपने लेखन के प्रति अधिक समर्पित होता है, समीक्षक विधा के शास्त्रीय पक्षों व तकनीकी आधारों के प्रति। यह माना जाता रहा है कि समीक्षक के पैर में लेखक का जूता फिट बैठना चाहिए। इसी प्रकार मैं यह भी मानता हूँ कि लेखक की कलम में कुछ स्याही समीक्षक की भी होनी चाहिए। अपने ही कार्य की समीक्षा करते समय रचनाकार तटस्थ तब तक नहीं रह सकते, जब तक उनका रचना के प्रति मोह समाप्त न हो जाए। इस हेतु अपना रचनाकर्म कर लेने के पश्चात कुछ दिनों तक रचना को बिना छुए रख देना चाहिए और उस अंतराल के पश्चात फिर पढ़ना चाहिए। निःसंदेह अधिकतर रचनाकारों का यह पूर्व में ही अनुभव होगा कि इससे रचना बेहतर होने में सहायता मिलती है। साथ ही स्व–आकलन भी अपेक्षाकृत उचित होता है।

4. आत्म–आलोचना की प्रक्रियाः

* प्रथम ड्राफ्ट लिख लेने के पश्चात अपनी रचना को कुछ दिन छोड़ दें। उसे पढ़े नहीं।
* परिस्थितियों और अपनी मानसिकता के अनुसार कुछ समय (यह समय एक सप्ताह भी हो सकता है, एक महिना भी और अधिक भी) व्यतीत हो जाने के पश्चात उस रचना को पुनः पढ़िए और अपनी दृष्टि समीक्षक (जिस सीमा तक हो सके) व पाठक की रखिए। हाँ! इस रचना के प्रथम ड्राफ्ट की कॉपी कहीं सुरक्षित रखना न भूलिए।
* उस रचना में जो भी आलोचनात्मक विचार समझ में आ रहे हैं, यदि तुरंत सुधर जाने वाले हैं तो सुधार दीजिए अन्यथा उनकी सूची बना लीजिए।
* यदि आपके अनुसार रचना में कोई विकृति मौजूद है तो उस पर तर्कसंगत विचार कीजिए। इन तर्कसंगत विचारों को भी पर्याप्त समय दीजिए।
* यदि कोई आत्म–आलोचना अति नकारात्मक भाव उत्पन्न कर रही है तो उसे त्याग दें।
* रचना को अपने तर्कसंगत विचारों के निष्कर्ष के अनुसार परिष्कृत करें।
* यदि परिष्करण के पश्चात भी लेखकीय संतुष्टि नहीं मिल रही है तो उपरोक्त प्रक्रिया को दोहरा सकते हैं।
* यदि दोहरावों के पश्चात् भी संतुष्टि नहीं मिल रही है तो आप रचना को स्वयं के अनुसार ही अयोग्य घोषित कर सकते हैं।

5. **इस कार्य में लघुकथाकारों द्वारा की गई आत्म–आलोचना**

आत्म–आलोचना इस तरह का शब्द है जैसे किसी व्यक्ति को उसी व्यक्ति द्वारा किसी कारण से एक अलमारी के हेंगर में टांग कर दरवाजा बंद कर दिया जाए। आत्म–आलोचना करने में दम भी घुट सकता है और हेंगर में टंगने वाली परेशानी भी झेलनी पड़ सकती है। हालांकि, एक समय पश्चात आत्म–आलोचना अधिकतर बार अन्यत्र–प्रशस्ति का कारण बन जाती है।

इस कार्य में प्राप्त रचनाओं में लघुकथाकारों ने जिन कमजोरियों का जिक्र किया है वे कमजोरियां कथ्य, प्रस्तुति. सन्देश, उद्देश्य, भावपक्ष, अधपकी, एक तरफा, शीर्षक, सपाट बयानी, कसावट, कालखंड, समसामयिकता, तर्कसंगत, अधिक हास्य की उपस्थिति, वर्णन सरीखी, समाधान न होना, पढ़ते समय भ्रम की संभावना, विषय के सीमित ज्ञान, लाघवता, शिल्प, विषय, शैली, अंत, काल्पनिकता, संवेदनशीलता, अधिक पात्र, अस्पष्टता, अँग्रेजी का अधिक प्रयोग, बहुआयामी, पात्रों के नामों का उल्लेख नहीं कर पाने, कलात्मकता, कथारस, सम्प्रेषण, भाषा, सत्यकथा जैसी,ठीक से उभार न पाने, रचना के विभिन्न भागों में असाम्यता, अस्वाभाविकता, लेखकीय प्रवेश, कहानी सरीखी, अर्थ समझाने की जरूरत हो जाने, प्रतीकात्मक लघुकथा लिखने के असफल प्रयास, सुष्ठु करने पर भावों के न उभर पाने तथा विस्तार करने पर कमजोर हो जाने, पात्रों का चरित्र चित्रण हो जाने, धारदार संवाद न होने तथा शब्दों की मितव्ययिता पर ध्यान नही दिए जाने की हैं। कुछ रचनाकारों ने स्वयं संतुष्टी न पाना भी कहा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि लेखकीय संतुष्टि न पाने का कारण रचना की दुर्बलता भी हो सकती है और लघुकथाकारों का अंतर्मन भी। हालांकि यह सर्वोत्तम है कि लघुकथाकार अपनी रचनाओं

की कमजोरियों पर चर्चा करने को न केवल सहमत बल्कि उत्सुक भी हैं। यह एक सत्य है कि किसी ज्ञान का न होना इतनी लज्जा की बात नहीं, जितना उस ज्ञान को सीखने के लिए तैयार न होना। यह कार्य भी कुछ जानने की दिशा में एक कदम है, दिशा सही है या नहीं यह निर्णय तो पाठक करें। हालांकि, यह बात भी कम मूल्यवान नहीं हैं कि लघुकथाकार आत्म–आलोचना करने में हाथ पर हाथ धरकर बैठे नहीं हैं।

6. निष्कर्ष

हमें अपने अतीत से सीखना चाहिए, वर्तमान का सदुपयोग करना चाहिए और भविष्य के प्रति आशावान रहना चाहिए। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि लघुकथाकार अपनी लघुकथाओं के विभिन्न तत्वों को समझकर स्व–मूल्यांकन करने में समर्थ हैं तथा अपनी दुर्बल रचनाएं वे प्रकाशन को नहीं भेजते और यदि भेज भी देते हैं तो कहीं–न–कहीं उसे रद्द करने का विचार उनके मस्तिष्क में रहता है। यही इसकी सार्थकता है।

संदर्भ :–

1. https://vbaraj.blogspot.com/2021/07/blog-post.html (दिनांक : 30 अगस्त 2021)
2. https://sahityayatra.com/wp-content/uploads/2021/01/sahitya_yatra_oct2019.jpg.pdf (दिनांकः 07 सितम्बर 2021)
3. डॉ. शकुन्तला किरण, हिंदी लघुकथा, संस्करणः 2010, संकेत प्रकाशन, अजमेर
4. पड़ाव और पड़ताल खंड 1 से 31 (https://booksdisha.blogspot.com/) (दिनांकः 10 सितम्बर 2021)
5. https://bearward64.rssing.com/chan-53270880/latest-php (दिनांकः 07 सितम्बर 2021)
6. https://barrulet64.rssing.com/chan-53270986/all_p2-html (दिनांकः 04 सितम्बर 2021)
7. लघुकथा कलश अंक 1 से 7
8. http://sahityaamrit.in/innerpage.php\pagei=380 (दिनांक : 07 सितम्बर 2021)
9. http://srijanyatra.blogspot.com/2012/04/blog-post-html (दिनांकः 05 सितम्बर 2021)
10. http://kathayatra.blogspot.com/2011/03/blog-post-html (दिनांकः 07 सितम्बर 2021)
11. https://www.facebook.com/veer.mehta.39589/posts/1866415736864998 (दिनांकः 08 सितम्बर 2021)
12. दृष्टिपत्रिका 'मेरी प्रिय लघुकथा' अंक सम्पादक : अशोक जैन
13. लघुकथा के समीक्षा बिंदु सम्पादक मधुदीप
14. डॉ.सतीशराज पुष्करणा, हिन्दी–लघुकथाः संरचना और मूल्यांकन, अध्ययन कक्ष (laghukatha.com) URL: https://laghukatha.com/2017/09/01(हिन्दी–लघुकथा–संरचना–और–म (दिनांक : 13 अगस्त 2021)
15. http://laghukathaduniya.blogspot.com (दिनांकः 11 सितम्बर 2021)
16. डॉ. हेमलता शर्मा, हिंदी लघुकथा : स्वरुप, परिभाषा और तत्व, Journal of Advances and

Scholarly Research in Allied Education Vol-I Issue-III April 2011] ISSN: 2230-7540] Available at http://ipublisher.in/File_upload/15639_83032641-pdf (दिनांक : 10 अगस्त 2021)

17. अंजलि शर्मा, हिंदी लघुकथा का विकास, 2007, सताक्षी प्रकाशन, रायपुर
18. डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी, लघुकथा प्रवाह और प्रभाव, लघुकथा मंजूषा 3: (खंड–1), 2019, वर्जिन साहित्यपीठ, नई दिल्ली
19. भगीरथ परिहार, हिंदी लघुकथा के सिद्धांत, 2018, Educreation Publishing] fcykliqj] ISBN: 978-1-5457-1979-4
20. साक्षात्कारः समझ लघुकथा कीः बलराम अग्रवाल से जितेन्द्र जीतू की बातचीत, http://www.abhivyakti-hindi.org/snibandh/sakshatkar/balram_jitu-htm (दिनांकः 11अगस्त2021)
21. https://www.facebook.com/idrmkr/posts/3195260697187054 (दिनांकः 02 सितम्बर 2021)
22. योगराज प्रभाकर, 'लघुकथा विधाःतेवर और कलेवर', http://www.openbooksonline.com/forum/topics/ 5170231:Topic:637805 (दिनांकः 07 सितम्बर 2021)
23. अशोक भाटिया, लघुकथाः लघुता में प्रभुता, https://rsaudr.org/show_artical.php\-id)309 (दिनांकः 02 सितम्बर 2021)
24. बलराम अग्रवाल, लघुकथा का प्रबल पक्ष, ISBN: 9788181872180
25. सम्पादक 'रडार', अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' लघुकथा–चिंतन और प्रक्रिया, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री
26. सम्पादकः अशोक भाटिया, कथा–समय–दस्तावेजी लघुकथाएँ
27. अशोक भाटिया, समकालीन हिंदी लघुकथा, प्रकाशकः हरियाणा ग्रन्थ अकादमी

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 22-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत वर्ष एवं गोरक्ष नाथ युगीन परिस्थितियाँ

प्रा० (डॉ०) गोविन्द कुमार टी० वेकरिया

म्युनि. महिला कॉलेज, गोन्डल–360311

पोस्ट. गोन्डल, जिला : राजकोट, गुजरात, पीन–360311,

भारत एक अमृत–पथ है। भारत आध्यात्मिक उर्जा तरंगों से स्पंदित है। भारत एक अदभूत, अनूठा एवं दिव्य देश है। भारत के श्वास में परम और अंतिम सत्य चलता है। भारत एक सनातन यात्रा है। यह देश विश्व का भाग्य विधाता है। इस देश से ही पूरी मनुष्यता का भाग्य जुड़ा है। क्योंकि इनके पास आदिनाथय शिवद्ध, भगवान् श्री कृष्ण, गुरु गोरक्षनाथ, भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर आदि गुरु शंकराचार्य, भगवान श्री राम, श्री कृष्ण, रामकृष्ण परमहंस, नागार्जुन, कबीर, मीरा, नानक, रैदास आदि को जन्म देने वाली अदभूत भूमि हैं। इनके पास दिव्य धरती माँ है। हमारे पास जो आभामंडल है वह दूसरों के पास नहीं है। दूसरे देश बड़े से बड़े वैज्ञानिक, साहित्यकार, कलाकार, संगीतकार, चित्रकार आदि प्रकार के प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं, लेकिन वह रहस्यदर्शी ऋषि–मुनि को जन्म नहीं दे सकते हैं। वह तो एक मात्र भारत ही कर सकता है। भारत के पास जो संपदा है। वह दुनिया के पास नहीं है। भारत ने ही सत्य का अर्थ, सत्य की परिभाषा, सत्य का स्वरूप दिया है। इस देश ने ही शाश्वत सत्य दिया है। सत्य का मौलिक स्त्रोत भारत है। भारत के पास जो समृद्धि है। वह विश्व के पास नहीं है। विश्व के पास जो समृद्धि है। वह बाह्य है। जब कि भारत के पास आतंरिक समृद्धि है। भारत एक आदर्श, चरित्रशील देश है। भारत देवताओं को पैदा करता है ।

विश्व में सबसे अधिक भगवान् ने यही जन्म लिया है। ऐसे ही एक भारतीय धर्माकाश अति महत्त्वपूर्ण सितारा गुरु गोरक्षनाथ भारत में हुए है। नाथ–सम्प्रदाय के अनुसार वह आदिनाथय शिवद्ध के अवतार है। इनका प्रागट्य भारत–भूमि में हैं। गोरक्षनाथ एक इतिहास का अंग नहीं हैं। वह एक व्यक्तिमात्र नहीं हैं। वह एक प्रतीक, एक काव्य, एक संगीत, एक सनातन सत्य है। वह एक अध्यात्मिक आभामंडल है। वह एक गंगोत्री हैं। वह गुरुओं का गुरु महागुरु हैं। इनके समान कोई नहीं हैं, वह अनूठा है। गोरक्षनाथ एक ऐसा नाम हैं जो भारत के लिए गौरव, सन्मान और गरिमा का विषय है।

डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी में भारतवर्षे के महान गुरु गोरक्षनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्षे में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने–कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति–आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योग मार्ग ही था। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसमें गोरक्षनाथ सम्बन्धी कहानियाँ न पाई जाती हों। .....गोरक्षनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे। उन्होंने जिस धातु को छुआ वहीं सोना हो गया। दुर्भाग्यवश इस महान धर्मगुरु के विषय में ऐतिहासिक कही जाने लायक बातें

बहुत कमी रह गई है। दंतकथाएँ केवल उनके और उनके द्वारा प्रवृर्तित योग मार्ग के महत्त्व प्रचार के अतिरिक्त कोई विशेष प्रकाश नहीं देती।'[1]

गोरक्षनाथजी भारतीय मध्यकालीन धर्म–साधना साहित्य एवं संस्कृति का एक महान व्यक्तित्व है। योगाचार्य डॉ0 सुरक्षति गोस्वामी ने लिखा है। 'गोरक्षनाथ अपने युग के महान योगी, धर्मनेता, कवि, लोकनायक एवं दार्शनिक व्यक्ति थे। नाथ सम्प्रदाय के लोग उनको आदि पुरुष, ब्रह्मतुल्य, अमर एवं शिवावतार मानते हैं। वह दरिद्रों के रखवाले थे, बालकों से बहुत स्नेह करते थे, उनका चरित्र बहुन्मुखी था। वे तेजस्वी, ओजस्वी, उदारवादी और अनेक प्रतिभाओं से संपन्न थे।'[2]

अनुश्रुतियाँ, धारणा, तथ्यों आधार पर कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ ने समाज को, संस्कृति को, धर्म और अध्यात्म को उन्मुख करने के लिए नाथ–पंथ को प्रतिष्ठित किया। कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा का उपदेश किया है। साधक को योग – दीक्षा ही है । समाज को नई दिशा दी है। डॉ0 नागेन्द्रनाथ उपाध्याय के अनुसार 'गोरक्षनाथ नवीं शती के उदार चेता, कर्मठ, संगठनकर्ता, समाजोद्धारक, लोकरक्षक, योग–साधना के विशिष्ट पुरस्कर्ता महासिद्ध थे।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की नवीनतम खोज के आधार पर गोरक्षनाथ का समय दसवीं शताब्दी ही अधिक तर्कसम्मत लगता है और डॉ0 कमलसिंह अपनी पुस्तक में विद्वानों के तर्क प्रस्तुत किये हैं और अपने तर्क आधार पर गोरखनाथ १०वीं शताब्दी के ही ठहरते है और कहते हैं कि गोरखनाथ हिंदी के प्रथम कवि माने जा सकते हैं। हिंदी साहित्य के आदिकाल का प्रारंभ १०वीं शताब्दी से माना जाना चाहिए। हम भी इनके तथ्यों प्रमाणों एवं तर्कों के आधार इनके दसवीं सदी पर सम्मति रखते हैं।

गोरक्षनाथ युग का परिवेश एवं परिस्थिति :

नाथ–सम्प्रदाय के सर्वोच्य, संगठनकर्ता एवं प्रवर्तक महायोगी एवं महागुरु गोरखनाथ का भारतीय इतिहास के मध्ययुग में आविर्भाव हुआ था। वह समय भारत का अन्धकार युग था। यानि इस समय को 'भारतीय आत्मा का अंधकारमय रजनीष् के रूप में जाना जाता है। इससे अनुमान हम कर सकते है कि गोरक्षनाथ अवतरण किन–किन परिस्थितियों और वातावरण में हुआ था। गोरक्षनाथ का आविर्भाव समय हम १०वीं शती मान चुके हैं। अतः हम इस समय का परिवेश एवं परिस्थितयाँ पर एक दृष्टि डालना अनिवार्य है। परिवेश का अर्थ है चारों ओर का वातावरण, गतिविधियाँ एवं परिस्थितियाँ जो व्यक्ति और समाज के विकास प्रभावित करते हैं। किसी भी युग में साहित्य अपने परिवेश से सम्पृक्त रहता है। इसके अंतर्गत मात्र समय एवं स्थान ही नहीं प्रयुक्त होता है, युग की वंशभूता, रहन–सहन, आचार–विचार, क्रिया–कलाप एवं साहित्य की प्राकृतिक पृष्ठभूमि सम्मिलित रहती है। जो रचना और रचनाकार की प्रेरक प्रेरक भावभूमि एवं शक्ति रहती है। परिस्थितियाँ–राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, शैक्षिक, वैज्ञानिक परिस्थितियाँ हो सकती है।

जहाँ तक गोरक्षनाथ के समय का प्रश्न है। इस दीर्घकाल में बड़े संघर्षों–अपकर्षों, विकटताओं, त्रासदा, विदेशी आक्रान्ताओं के निरंतर हमलों का रहा हूँ। किसी भी काल या युग की साहित्यिक गतिविधियों को यथार्थ रूप में जानने के लिए परिस्थितियों का अध्ययन अत्यावश्यक होता है। परिस्थितियों से तत्कालीन जीवन का चित्रण हमारे सामने खडा हो जाता है । उससे ज्ञान होता है। अतः गोरक्षनाथ युग की परिस्थिति पर नजर करेंगे।

1. राजनीतिक परिस्थिति :–

इस समय भारतीय राजनीतिक इतिहास का सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। संवत–७०४ में शक्ति शाली सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु से विशाल साम्राज्य, बल–वैभव साम्राज्य खंड–खंड होकर बिखर चुका था । भारत वर्षे राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टी से पतनोन्मुख हो रहा था। हिन्दु राज्य की केंद्रीभूत सत्ता का विनाश होना शुरू हो चुका था। मुसलमान शासकों के आक्रमण निरंतर पश्चिम से होने लगे थे । १२वीं शताब्दी में उत्तर भारत का अधिकांश भाग विधर्मी के सशक्त अधिकार में आ गया था । यह समय भारत का इतिहास अपाहिज, शक्तिहीनता एवं विवशता का था। भारत के बिखरे हुए छोटे–छोटे हिन्दू शून्यों के उत्थान एवं पतन की बेहद दुःख गाथा का है। पश्चिम की ओर शक्तिशाली सोलंकी, राठौर, तोमर, अहीर, पंवार, कठपाठ, परिहार, चंदेल चौहान, गहलोत आदि वंश के सताओं के राजपूत शासन परस्पर लड़ते थे, विदेशी शक्ति के सामने अहम् के कारण एकता एवं संगठन स्थापित न कर सके । परिणाम यह हुआ बाहरी ताकत के हमलों का सामना करने में अकेले नाकाम रहे और राज्य हारते रहे विदेशी शक्तियाँ हावी हो गई। राजपूताना शक्ति एवं शौर्य व्यर्थ में क्षय हो गई अपनी मिथ्या आन–बान–शान एवं खोखली मर्यादा के हेतु वीर राजपूत परस्पर हिंसा, रक्तपात, प्रतिशोध रूपी विध्वंशकारी प्रवृत्तियों के शमन में उलझे रहे थे। बहुत ही कम जैसे पृथ्वीराज चौहान, द्वितीय दुर्लभराज, अजयदेव, राजा अर्जोराज, रणथम्भौर के हम्मीरदेव, बीसदेव आदि राजों देशभक्ति के कारण हिन्दु राजा थे, जो निरंतर मुसलमानों से मुकाबला करते रहे, संघर्ष करते रहे अनेक बार यवनों को पराजित किया था।

सन् 975 ई0 में सुबुक गीन ने अपनी विशाल सेना लेकर सिन्धु पार कर भारत पर आक्रमण किया जिसके परिणाम स्वरूप कितने ही हिन्दु राजाओं का केवल पतन नहीं हुआ बल्कि असंख्य हिंदी लोग हिंदु धर्म छोड़कर मुसलमान होने लगे। 1175 ई0 में गजनी शासक मुहम्मद गौरी ने मुल्तान, पंजाब, पर अधिकार कर लिया। उसके बाद उसके या उनके वंशजों ने पेशावर, स्यालकोट, दिल्ली, कनौज, बुन्देलखंड, बिहार, बंगाल आदि पर आदि पत्य स्थापित कर सशक्त यवन शासन की नींव डाली। दासवंश, खिलजीवंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश, लोदी वंश के विभिन्न शासकों साम्राज्य रहा, इन्हों हिन्दूओं सदैव दुश्मन एवं विधर्मी माना है। हिन्दु पर अमानवीय अत्याचार किये, शोषण किया, निर्मम चक्र चलाया था। क्रूरता की तमाम हदे पार कर चुके थे, हिन्दु पर। भारतीय हिन्दु धर्म, संस्कृति और सामाजिक गौरव पर मुसलामानों निर्मम प्रहार किया। इनके आक्रमणों के कारण भारत में सूफी साधको का प्रवेश हुआ भारत में यह सूफी अपना धर्म–प्रचार कर हिन्दू के मुसलमान बनाते थे। सन् 1067 में अब्दुला ह्यमनो ने गुजरात में प्रचार–प्रसार किया एवं सैकड़ों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था।

गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार 'मुस्लिम शासकों के आश्रय में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की पूर्ववर्ती परम्पराओं के पोषित एवं विकसित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता अपितु अपने संकीर्ण दृष्टिकोण, धर्मान्धता की भावना एवं क्रूरतापूर्ण व्यवहारोन्नति के कारण उन्होंने भारतीय संस्कृति के उन सभी केन्द्रों। विशेषतः मंदिरों मठों एवं विद्यालयों को नष्ट करने का पूरा प्रयास किया जो कि जनता के आश्रय में पल रहे थे। ऐसी स्थिति में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की प्राचीन साहित्य–परम्पराओं का एकाएक पतन हो जाना स्वाभाविक है।'[3]

मुस्लिम अन्याचारों का मुख्य केन्द्र बिंदु पश्चिम एवं मध्य भारत था। वही मध्य देश है, जहाँ भारतीय संस्कृति का उन्मेष हुआ था और जहाँ से आर्य संस्कृति का विकास परे राष्ट्र में हुआ था। इसी मध्यप्रदेश की बोलियाँ पूरे देश की साहित्यिक एवं अभीव्यक्ति की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती थी। विदेशी शासन से लड़ने में अक्षम इस मध्य प्रदेश के सामंत स्वतन्त्र होते है ही शक्ति एवं सौंदर्य की उपासना में तल्लीन हो गए थे। अपने राज्य को ही राष्ट्र

का गौरव देने वाले, सामंत एक दूसरे को पराजित करने में लगे हुए थे। अराजकता, गृहयुद्ध, विद्रोह एवं शोषण के कारण जनता के सामने आश्रय का कोई स्थान नहीं था। 8वीं शदी से 14वीं शदी तक राजनीतिक स्थिति अति भयावह थी। भारतीय हिन्दू राजाओं के परस्पर युद्धों की पृष्ठभूमि में केवल वो बाते थीं। एक नारी और दूसरी एक दूसरे क नीचा दिखाने का प्रयास। पराजित राजाओं विदेशी आक्रमणकारियों से सहायता मांगते थे। ऐसे हजारों शासक थे। इसके परिणामस्वरूप अरबों, तुर्कों और मुगलों का प्रभाव बढ़ा था।

इस प्रकार पूरा युग राजनीतिक दृष्टी से अराजकता का था। युद्धों में निरंतर उलझे राजों के पास समाज एवं जनता की ओर ध्यान देने वाला कोई नहीं था और कोई अवकाश भी नहीं था। अतः कहा जायेगा राजनीतिक दृष्टी से भारतीय इतिहास का यह काल पतन का काल है। हिन्दु धर्म एवं प्रजा त्रस्त थी। विदेशी आक्रान्ताओं के त्रास के साथ–साथ भारतीय हिन्दु प्रेमी राजाओं के अत्याचारों भी चरमसीमा से पर था। प्रजा अत्यंत पीड़ित थी। यह युग भारतवर्षे के इतिहास का दुर्भाग्यपूर्ण समय था।

2. धार्मिक परिस्थिति :

गोरखनाथ के आविर्भाव से पहले धार्मिक वातावरण लगभग अस्त–व्यस्त एवं संकटो से भरा हुआ था। धर्म के विभिन्न स्त्रोत। वैदिक, बौद्ध, जैन, शैव, शक्ति, वैष्णव आदि पारस्परिक संघर्ष में रहते थे। परिस्थिति को इन्होंने अति जटिल बना दिया था। सब अपने को श्रेष्ठ स्थापित करने में एक दूसरे में होड़ लगी थीं। देश व्यापी धार्मिक अशांति के इस काल में एक बाहरी धर्म–इस्लाम का प्रवेश होता है। इनके आगमन तक विभिन्न भारतीय धर्मो जनता के निम्न, अशिक्षित वर्ग की कोई चिंता नहीं करते थे। पूर्व बौद्ध–धर्म के उत्थान के समय निम्न–वर्ग के धर्म–नेताओं को प्रचार का लक्ष्य बनाया था। गौतम बुद्ध ने जन–भाषा में उपदेश दिया और दिलवाया था। हिन्दु धर्म के नेताओं ने संस्कृत में एवं जनपदी स्तर के ग्रंथों, विशेषतः पौराणिक, साहित्य की रचना करके, पुनः संस्कृत को प्रतिष्ठित किया था।

इस युग में पौराणिक धर्म उच्च वर्ग के शिक्षित लोगों तथा शास्त्राक्त विद्वानों तक सीमित होने लगा था। इस्लाम के प्रचारकों ने जनता के निम्न वर्ग को न केवल अपने धर्म में ऊँचा स्थान दिया और उनको स्वीकार किया। इन्होंने साम, दाम, दण्ड आदि सभी प्रकारों से आकर्षित किया, प्रेरित किया एवं विवश भी किया ।

भारतीय धर्मो में खास करके बौद्ध एवं जैन धर्मों में वामाचार पद्धति का अति प्रचार – प्रसार के कारण धार्मिक वातावरण दूषित हो गया था। धर्म का नैतिक स्तर लगभग गिर चुका था। इनके मूल में कामुकता थी एवं मदिरापान, माँस भक्षण मैथुन आदि का प्रचलन अतिशय था। मानवीय संस्कृति का पतन का काल था ऐसा माना गया है । महासुख की प्राप्ति के लिए सिद्धों की प्रतिक्रिया के रूप ने गोरक्षनाथ ने नाथ–संप्रदाय का आविर्भाव किया, उसको सुसंगठित करके सात्विक स्वरूप में चलाया था । गोरखनाथ इनके प्रवर्तक रहे हैं।

इस युग में विभिन्न धार्मिक मतों का अस्तित्व पाया जाता है। धर्म और धार्मिक संप्रदाय धर्म के तत्त्व को त्याग कर, मर्म को त्याग कर, बाह्याचारों की अधिक आकर्षित थे। इस्लाम के प्रवेश से धार्मिकता में परिवर्तन आने लगे थे। धर्म का ठेका आचार्यों के पास था। आम जनता कर्मकाण्डो, आडम्बरों अंधविश्वासों संसार की असारता, परलोक, भाग्य आदि के प्रसार–प्रचार से लोगों में जीवन को लेकर उदासीनता फैल गई थी।

अतः कहेंगे कि भारत का तत्काली यगोरक्ष युगद्ध विभिन्न सम्प्रदायों, मतों, मठो, लोग विभक्त हो चुके थे। कुल मिलाकर यह युग धार्मिक परिवेश को लेकर अत्यंत दूषित था। अत्यंत विषम एवं असंतुलित था। जनमानस

पर गहरा असंतोष, क्षोभ एवं भ्रम के शिकार थे। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ था।

3. सामाजिक परिस्थिति :

राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सम्पूर्ण असर सामाजिक स्थिति पर पडी थीं। भारतीय समाज के लोग शासकों और धर्मगुरुओं से निराव्रित थी। राजाओं अहम् और विधर्मियों से युद्धों जनता बुरी तरह से पीसी जाती थीं। जनता की परिस्थिति लाचार, कमजोर एवं निराश्रित थी। वह इन स्थिति में ईश्वर की और दौड़ती थी । रास्ता अन्धकार के कारण भ्रमित कर देता था। असहायता की स्थिति चारों और थीं। समाज आदर्शहीन बन गया था। इस समय जातीयता महत्त्व दिया जाता था। जाती–पांति के बंधन कड़े थे। धर्म के अनुसार समाज अंधश्रद्धा एवं रूढ़िगत हो गया था। परिवार–परिवार था ही नहीं उच्च वर्ग के लोग भोग करते थे। निर्धन श्रम ही करते थे। नारी मात्र भोग की वस्तु ही थीं। उसका क्रय–विक्रय अहरण हुआ करता था। सामान्य जनता के लिए शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। सती प्रथा चरम पर थी। अनके प्रकार के अंधविशवास चारों ओर था। सामाजिक उच्चता थी ही नहीं। बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पड़ी थी। दरिद्रता–गुलामी, शोषण, दुःख दिया प्रताड़ना आदि जनता के लिए अनिवार्य बन गया था।

तरह–तरह के खोखले पाखंडों, ढकोसलों, पूजा पाठ कि विभिन्न स्थिति, पद्धतियों, तंत्र–मंत्र, अभिशाप–वरदान आदि से पथभ्रमित जनता की जीवन धुरी घूम रही थी। साधू, तांत्रिको, संन्यासियों आदि के चमत्कारिक योगप्रदर्शन चारों ओर उनकी बोल–बाला थी। महामारियाँ, आर्थिक तंगी, अकाल, महंगाई, युद्धों से इस युग की भारतीय प्रजा त्राहिमाम थी। इस युग का सामाजिक वातावरण निराशा जनक था। समाज, जनता हर तरह से आतंकित थी। समाज ठप हो गया था।

4. आर्थिक परिस्थिति :

गोरखनाथ के युगीन परिवेश आर्थिक दृष्टी से समृद्ध था। इसलिए विदेशी लूटने के लिए बार–बार यहाँ आते रहते थे। भारत को लूटकर चले जाते थे और यहाँ की समृद्धि देखकर रूक भी जाते थे और अपनी सत्ता भी चलाते थे। हमारे मंदिरों में इतना धन था कि लूटेरे पहले मंदिरों पर हमला करते थे । महमूद गजनवी ने जब सोमनाथ मंदिर को लूटा, सारे धन लेकर चला गया वह प्रसिद्ध घटना है । ऐसे बाहरी लोग समय–समय पर आकर आक्रमण कर के सारे धन लूट कर जाते रहते थे। इस सब से बड़ा कारण राजसत्ता बिखरी थी, असंगठित थी, भोगविलास में लुप्त थीं। धर्मगुरु भी अंधविश्वास और विलास में थे। सामाजिक व्यवस्था तूट चुकी थी। परिणाम चारों ओर से सीमा खुली थी, प्रतिकार बहुत ही कम होता था। दिग्भ्रमित सा बिखरा हुआ, भटकाव भरा अनिश्चित परिवेश था आम जनता को लूटा जाता था। धन संपत्ति के लिए आपसी भी संहार होता था। जिसकी लाठी उसकी भैंस जैसी परिस्थिति थी। राजा भी आपस में एक दूसरे पर संहार कर धन लूटते थे।

अतः कह सकते हैं कि इस युग में भारत आर्थिक दृष्टी से समृद्ध था और यह भी कह सकते हैं कि इनकी रक्षा करने कोई व्यवस्था नहीं थी, परिणाम स्वरूप बाहरी शक्तियों का वर्चस्व इस युग की धन संपत्ति पर था, हावी हो गया था।

5. सांस्कृतिक परिस्थिति :

गोरक्षनाथ के आविर्भाव के समय भारतीय संस्कृति उन्नति पर थी। संगीत, चित्र, मूर्ति, भवन–निर्माण आदि कलाओं के क्षेत्र में जातीय गौरव सर्वत्र अभिव्यक्त था। ललित कलायें धर्म के अनुप्राणित थी जैसे पूरी, सोमनाथ,

खजुराहो, बेगलोर, कांची, तंजोर आबू के भव्य मंदिर आदि इस समय की विभूतियाँ है। सोमनाथ मंदिर आदि की भव्यता, विशालता, समृद्धि एवं धर्मानुप्रणेता को देखकर आश्चर्यचकित हो गया था और इनको लूटने का मन बनाया था ।

संस्कृति का मुख्य केंद्र राजस्थान था। यही के राजपूत गृह कलह में उलझे रहते थे। मुस्लिम हमलावरों का आतंक बना रहा। इनको हम रोक नहीं सके और हिंदुत्व पर आक्रमण तेज होते गए। इनके कारण भारतीय संस्कृति एवं कलाओं मूल स्वरूप क्षत–विक्षत हो गया।

अंतिम सम्राट हर्षवर्धन कलाप्रेमी शासक था। उनहोंने समस्त भाषाओं के कलाकारों के प्रति गहरी अभिरुचि थी। उनका राज दरबार सुविख्यात कलाकार सन्मान होता था। उनके शासन के समय हिन्दु धर्म एवं संस्कृति के उच्चत्तम नये–नये आयाम गठित हुए। इनके पतन एवं विधर्मीओं के आक्रमण से भारतीय सांकृतिक धीरे–धीरे ह्रासोन्मुखी हो गई एवं विधर्मी के रिवाजों खास करके मुस्लिम का प्रभाव आ गया। इस्लामी आक्रमण के कारण हर क्षेत्र में उनका ही प्रभाव छाया था। इनके कारण इस्लामी संगीत से नये वाद्ययंत्रों का परिचय भारतीय संगीत से हुआ। इनके वाद्ययंत्रों में अलगोजा, सारंगी एवं तबला महत्त्वपूर्ण है। चित्रकला पर गहरी इनकी असर रही। भारतीय कला पर सूफी का प्रभाव रहा। मूर्तिकला हिन्दू धर्म की अदभूत देन थी, वह तूटती गई। खजुराहों के अंतर्गत शैव, वैष्णव और जैन, बौद्ध आदि धर्म के देवता की मूर्तियों अदभूत थी। इनको इस्लामी राजा तोड़ते गए खंडित करते रहे। इस युग में संगीत कला का वर्चस्व रहा था।

इस प्रकार गोरखनाथ की पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति, उत्कर्षता प्राप्त निजी परम्परा के ह्रास एवं इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत स्वरूप बहुत ही कम मिलता है।

6. साहित्यिक परिस्थिति :

गोरक्षनाथ पृष्ठभूमि के 'परिवेश में मुस्लिम शासकों की अन्यायी शक्ति के अंतर्गत भारतीय परम्पराओं एवं साहित्य को पनपने, विकसित होने का अवकाश नहीं था। यह मुस्लिम शासक कलम शक्ति की अपेक्षा तलवार की भाषा जानते थे है इनकी भाषा ही चलती थी। इनकी संस्कृति सोच, धर्मान्धता, कट्टरता से हिन्दू संस्कृति के गौरवमय प्रतीकों साहित्य, मंदिरों मठों शिक्षालयों, इनके अध्यापको, साधुसंतों को क्षति पहुंचाने में सक्रिया थे, इन्होंने हिन्दू संस्कृति के सारे स्थम्भों पर आक्रमण कर अकल्पनीय क्षति नुकसान पहुंचाया। यह लोग भाषाओं में हुई, अरबी–फारसी का ही उपयोग लेने पर जोर देते थे।

यवन शासकों के दमनकारी वलण, व्यवहार के बावजूद संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषाएँ अपना श्रेष्ठतम् स्वरूप देने में तत्पर रही सफल रही। मगध, कन्नौज एवं कश्मीर राज्यों में संस्कृत भाषा में सृजन हुआ। अभिनव गुप्त, कुंतक, क्षेमेन्द्र, मम्मट, आचार्य विश्वनाथ, भवभूति, हर्षवर्धन, भट्टनारायण, विशाखदत, प्रभूति इसी समय की देन है। यह संस्कृत साहित्य का अनुपम, अतुलीय, अदभूत साहित्यकारों है। इसमें भाव–प्रवणता, संवेदनता, अनुभूति, गाम्भीर्य आदि गुणों के भण्डार है। प्राकृत आम जनता से प्रयुक्त होकर अपभ्रंश के रूप में विकसने लगी। इसी अपभ्रंश से साहित्य रचा गया वह है। सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य एवं नाथ साहित्य। बौद्ध धर्म के वज्रयानी सम्प्रदाय के सिद्धों सम्प्रदाय से सम्बन्ध विचारधारा, धार्मिक अनुभूतियों आदि के प्रकाशन करने के लिए साहित्य की रचना हुई। इसी परम्परा से एक साधक गोरक्षपा याने गोरक्षनाथ ने सिद्धों के भोगवाद के विरोध में सुसंगठित

'नाथ–सम्प्रदाय की प्रसार–प्रचार किया। उन्होंने सात्विक योग–साधना की अनूठी पद्धतियों दी और प्रधानता दी।

इस समय साहित्य रचना की तीन शाखाएँ थीं। एक शाखा संस्कृत साहित्य की रही थी, जो परम्परा का निर्वाह कर रही थी, जो अदभूत थी। दूसरी शाखा प्राकृत तथा अपभ्रंश की थी, जो अपभ्रंश में साहित्य लिखा जा रहा था। और तीसरी धारा हिंदी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य था। संक्षेप में इस समय की परिस्थिति विपरीत थी, अस्थिर थी, फिर भी साहित्यकारों, संताने अपनी दिव्य कलम से अद्वितीय कलम चलायी थी। इस समय तीन प्रकार के साहित्य रचा गया – एक राज्याश्रित दूसरा राज्याश्रित मुक्त एवं तीसरा धर्माश्रित साहित्य।

गोरक्षनाथ की पृष्ठभूमि का सारांश यह है कि इसके युग का परिवेश संघर्ष एवं पतन, धार्मिक संकट एवं विकृति का, समाज में सामाजिक विकृतियाँ चरम पर थी, आर्थिक दृष्टि अति कमजोर थी। जनता त्रस्त हो चुकी थी, पीड़ित थी, राजाश्रित साहित्य में झूठी प्रशंसा एवं विकृतियाँ थी। यह युग हर क्षेत्रे कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा था ऐसे युग में भारतीय धर्माकाश एवं साहित्यकाश में एक अदभूत, दिव्य अनूठा, अद्वितीय, सितारा का उदय हुआ वह है। महागुरु गुरु गोरक्षनाथ। इस महान गुरु ने भारत में एक नई चेतना जगाई एवं नई दिशाएँ दी । इनके सूत्र आज के अति भौतिक वादी एवं मतलबी संस्कृति से भटके हुए मानव–जीवन को पुनः गौरव, गरिमा प्रदान कर सकते हैं।

सन्दर्भ :

1. नाथ–संप्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन–इलाहाबाद– 1, संस्करण–2010, पृ0 25
2. पतंजलि योग एवं नाथयोग : योगाचार्य, डॉ0 सुरक्षित गोस्वामी, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली–59, संस्करण–2005, पृ0 18
3. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त, प्रथम खंड, लोकभारती प्रकाशन – इलाहाबाद–1, दसवाँ संस्करण–2013, पृ0 81
4. गोरखनाथ और उनका युग : रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस– दिल्ली, संस्मरण–2017
5. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल, मयूर पेपर बैक्स–नोएडा, संकरण–1, 1973

मो. 9409444111

email : profgtvekariya/gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 29-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यवसायिक पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन

प्रोफेसर मीना यादव, विभागाध्यक्ष –हिंदी
बरेली कॉलेज, बरेली–243005 India

पुरानी शिक्षा व्यवस्था में माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्रदेश के विभिन्न माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 11 तथा कक्षा 12 में व्यावसायिक शिक्षा का पाठ्यक्रम मात्र औपचारिक ही रहा है। व्यावसायिक शिक्षा के रूप में लिए जाने वाले प्रमुख विषय फल एवं खाद्य संरक्षण, पाक शास्त्र परिधान रचना एवं सज्जा, धुलाई रंगाई, रंगीन फोटोग्राफी, रेडियो एवं रंगीन टेलीविजन, ऑटोमोबाइल्स, मधुमक्खी पालन, टंकण, कंप्यूटर तकनीक एवं मेंटेनेंस इत्यादि अनेक विषय हैं इन विषयों को पढ़ाने के लिए विभिन्न माध्यमिक विद्यालयों में मैनेजमेंट तथा प्रधानाचार्य स्तर पर अतिथि विषय विशेषज्ञ नियुक्त किए जाने का प्रावधान था जिन्हें एक निश्चित मानदेय दिया जाता था। इन टीचर्स की योग्यता संबंधित ट्रेड में इंटरमीडिएट, उसी ट्रेड में कोई डिप्लोमा तथा अन्य विषयों द्वारा किया गया ग्रेजुएशन तथा पोस्ट ग्रेजुएशन है।

इंटरमीडिएट में व्यावसायिक शिक्षा के रूप में लिए गए विषयों में से अधिकतर विषय किसी भी विश्वविद्यालय में ग्रेजुएशन तथा पोस्ट ग्रेजुएशन लेवल में नहीं है अतः व्यावसायिक शिक्षा को आधार बनाकर ग्रेजुएशन तथा पोस्ट ग्रेजुएशन करना संभव नहीं रहा। यही कारण है कि इंटरमीडिएट लेवल पर व्यावसायिक शिक्षा लेने वाले छात्र छात्राएं इन विषयों को आधार बनाकर उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। इसका परिणाम हुआ कि इस स्तर पर अध्यापन के लिए योग्य फैकल्टी उपलब्ध नहीं हो सकी और व्यवसायिक पाठ्यक्रम का कोई सकारात्मक और प्रभावशाली परिणाम दिखाई नही दिया।

अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत स्नातक स्तर पर विषयों की संरचना पर विचार करते हैं–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्र आधारित शिक्षा नीति है। वार्षिक शिक्षा प्रणाली के स्थान पर सेमेस्टर सेमेस्टर प्रणाली को लागू किया गया है जिसमें अंको के स्थान पर परीक्षार्थी को ग्रेड प्रदान किया जाएगा। इस व्यवस्था में मल्टीपल एग्जिट और मल्टीपल एंट्री का प्रावधान भी है।

स्नातक स्तर पर परंपरागत विषयों की भांति इस शिक्षा नीति में 3 मेजर विषय और एक माइनर विषय का प्रावधान है। इसमें मुख्य विषय के साथ–साथ को –करिकुलर और व्यवसायिक पाठ्यक्रम '(वोकेशनल)' स्किल डेवलपमेंट आदि को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। को –करिकुलर के रूप में प्रत्येक सेमेस्टर में एक विषय को अनिवार्य बनाया गया है। को– करिकुलर विषय –खाद्य पोषण एवं स्वच्छता, प्राथमिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा एवं योग, मानव मूल्य एवं पर्यावरण, विश्लेषणात्मक योग्यता एवं डिजिटल अवेयरनेस,

संचार कौशल एवं व्यक्तित्व विकास हैं। व्यवसायिक पाठ्यक्रम में स्थानीय आवश्यकताओं की अनुसार विश्वविद्यालयों को पाठ्यक्रम निर्धारण की छूट दी गई है कुछ मुख्य व्यवसायिक पाठ्यक्रम है– व्यवहारिक हिन्दी, फंक्शनल इंग्लिश, रिसर्च सर्वे, बेसिक्स ऑफ टैली, मैनेजमेंट ऑफ केपिटल मार्केट ऑपरेशन, ऑफिस मैनेजमेंट एंड एंड कंप्यूटर एप्लीकेशन, सिस्टमैटिक लैब टेक्निक्स, एमएस ऑफिस एप्लीकेशन, लेबोरेटरी टेक्निक्स इन फिजिक्स, कंप्यूटर एप्लीकेशन, एडवरटाइजिंग, ऑफिस मनेजमेंट एंड सेक्रेटेरियल प्रैक्टिस, ऑफिस ऑटोमेशन यूजिग एमएस ऑफिस।

को–करिकुलर और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के कारण ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशिष्ट शिक्षा नीति है। को–करिकुलर पाठ्यक्रमों से छात्र– छात्राओं के व्यक्तित्व का विकास होता है, समाज के प्रति संवेदनशील बनते हैं, उत्तम स्वास्थ्य के साथ सच्ची देशभक्ति, और समाज की समस्याओं को हल करने की क्षमता विकसित होगी है वही व्यवसायिक शिक्षा से छात्र के कौशल में वृद्धि होगी है और वह रोजगार तलाशने में सक्षम होता है ।

कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मूल स्तम्भ को करिकुलर के साथ व्यवसायिक पाठ्यक्रम है। सभी उच्च शिक्षण संस्थानों, जागरूक अभिभावकों, छात्र–छात्राओं, शिक्षकों, प्राचार्यों आदि सभी को इन पाठ्यक्रमों को भलीभांति चलाने के लिए गंभीरता के साथ विचार कर कार्य योजना बनानी होगी अन्यथा पिछली व्यवस्था की तरह माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से प्रारंभ किए गए फिजिकल एजुकेशन और पर्यावरण विषयों की भांति यह पाठ्यक्रम भी कागजों पर ही गुणवत्ता की शोभा बढ़ाएंगे, हकीकत में नहीं।
समस्याएं – शिक्षण संस्थानों विशेष रुप से महाविद्यालयों में संसाधनों की कमी है (जब शिक्षा नीति लागू किए 1 वर्ष से अधिक हो गया है, जो सभी प्रकार के संसाधन जुटाने के लिए पर्याप्त है), पर्याप्त विषय वार शिक्षक भी नहीं है। ऐसे में इन अतिरिक्त विषयों में अध्यापन और उनका प्रयोगात्मक कार्य संपन्न कराना एक गंभीर समस्या है। ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता कि व्यवसायिक पाठ्यक्रम के लिए टीचर्स की आवश्यकता नहीं होती है। (जैसा कि विश्वविद्यालय के एक वरिष्ठ प्रोफेसर का कहना है)। किसी भी विषय का सैद्धांतिक भाग प्राध्यापकों द्वारा ही पूरा कराया जाएगा जहां तक व्यवसायिक पाठ्यक्रम के प्रयोगात्मक भाग का सवाल है वह संसाधन उपलब्ध होने की स्थिति में संस्था अन्यथा किसी उद्यौगिक संस्था या एनजीओ से एमओयू करके पूरा कराना होगा। दोनों ही परिस्थितियां काल्पनिक प्रतीत हो रही है क्योंकि कॉलेज के पास संसाधन नहीं है और अधिकांश कॉलेज किसी औद्योगिक संस्था या एनजीओ से एमओयू करने को इच्छुक नहीं है। 1 या 2 कॉलेजों ने एमओयू भी कराया लेकिन औद्योगिक संस्थानों ने प्रयोगात्मक कार्य न करा कर केवल प्रमाण पत्र देकर औपचारिकताएं पूरी की।

सुझाव – शिक्षण संस्थाएं पूरे मनोयोग और निष्ठा से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का क्रियान्वयन करती हैं तो उन्हें मेजर और माइनर विषयों के अतिरिक्त को–करिकुलर और विशेष रूप से व्यवसायिक पाठ्यक्रम पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि हमारे छात्र हर क्षेत्र में दक्ष होकर आदर्श नागरिक बन सके और देश को विकासशील देशों की अग्रिम श्रेणी में खड़ा कर सकें।

Email : meenaya1@gmail-com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 31-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में वर्तमान भारत की सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्थिति

मिर्जा मासुमे फातिमा, शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग
आन्ध्र विश्व विद्यालय, विशाखपट्टणम

हमारे समाज में सदियों से खासकर आदिकल से भक्ति काल, भाक्ति काल से रीतिकाल और आधुनिक काल तक जिस साहित्य का सृजन किया गया था वह हमारी सभ्यता एवं संस्कृति की जान है। विश्व भर में द्वितीय स्थान प्राप्त भाषा के रूप में विद्यमान हिन्दी की वर्तामान स्थिति उतनी आशाजनक नहीं मानी जा सकती और इसका एकमात्र कारण यहीं है कि 21वीं सदी तक आते–आते हमारे हिन्दी साहित्य में सृजन शक्ति के अभाव का दृष्टिगोचार होना। इस स्थिति को सुधारकर हमारे साहित्य को पूर्व वैभव दिलाने के उद्देश्य से ही नरेन्द्र कोहली, रणेंद्र, सुधीर निगम, मृणाल पाण्डे जैसे मूर्धन्य साहित्यकारों ने 21वीं सदी में अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को उज्ज्वल बनाने का जो प्रयास किया वह अवश्य ही प्रशंसनीय है।

समाज मानव समुदाय की एक व्यवस्था है जिसमें वह दूसरों पर निर्भर हो कर अपना जीवन व्यतीत करता है। इस संदर्भ में राईट ने लिखा है "मनुष्य के समूह को समाज नही कहा जा सकता बल्कि उस समूह के अंतर्गत उसके संबंधों की व्यवस्था का नाम समाज है।" साहित्यकार अपनी दृष्टि से समाज को देखता है, उसे समझता है और अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है और उसे सुधारने का प्रायास भी करता है। इसका अर्थ यहीं है कि समाज को व्यवस्थित बनाने में साहित्यकार, विशेष रूप से कथाकार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

समाज का इकाई माने जाने वाला मानव का अपने समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। उसकी एक जिम्मेदारी यह भी है कि वह ऐसा कार्य करे जो समाज के हित में हो न कि समाज के विरोध में। समाज के द्वारा निर्धारित कुछ आचार–व्यवहारों का पालन कर अपने जीवन को सुखमय बनाने के साथ–साथ वह आगामी पीढ़ीयों के लिए पद–चिह्न छोड़ता है। सच्चा नागरिक वहीं होता है जो अपने स्वार्थ से ऊँचा, समाज का कल्याण माने और सभी के प्रति प्रेम, दया और श्रद्धा बनाये रखें। इन गुणों के प्रतिनिधी के रूप में **सुधीर निगम** कृत **'धर्मात्मा विभीषण'** उपन्यास का नायक विभीषण हमारे सामने आता है। जो खुद असुर होते हुए भी भाई रावण के द्वारा किया गया सीता हरण जैसे अनैतिक कार्य को बढ़ावा न देकर उसका विरोध करता है। वह रावण से कहता है "आपकी दृष्टि यह क्यों नहीं पहचानती कि ऋत का रुपकल्प बदल चुका है। आश्रम–मंडलों में, जिन्हें आप सदा नष्ट करने का असफल प्रयास करते रहे हैं, नया ऋत–चक्र चालू हो चूका है। आपने ऋषि, देव, गंधर्व, यक्ष–कन्याओं का, विवाहित स्त्रियों का अपलहरण क्या इस कारण किया है कि आप राजा होने के नाते

अबाध भोग के अधिकरी हैं। इन अबलाओं की 'हाय' पुंजीभूत होकर अब सीता के रूप में अशोक वाटिका में बैठी है।"[1]

20वीं सदी के उत्तरार्ध के साहित्यकारों की रचनाओं में स्यानीय बोलियों के शब्द भरे हुऐ हैं इससे उनके वस्तु पक्ष को पूरी तरह से समझना न केवल हिन्दीतर भाषियों के लिये बल्कि हिन्दी भाषियों के लिए भी कठिन हो रहा है। "वास्तव में इस कठिनाई का समाधान या तो संबंधित साहित्यकार कर सकते हैं अथवा सकारात्मक प्रवृति रखने वाले प्रकशक भी कर सकते हैं। ऐसे उपन्यासों में समाज के लिए उपयोगी सभी अंशों का यदि वे स्थानीय बोलियों में लिखे गये हों तो उनका संस्कृतिनिष्ट अनुवाद कथाकृति के अन्त में दिया जाता तो संबंधित कृति के भावपक्ष को पूरी तरह समझकर अपने आदर्शों का अनुपालन करने की सभी सहृदय पाठक चेष्टा करेंगे। ऐसा प्रयास साहित्य के द्वारा भारतीय मूल्य क्या, वैश्विक मूल्यों की स्थान में पूर्ण सहयोगदे पाएगा।"[2]

भाषा को जन–जीवन में प्रसारित करने की अद्‌भुत क्षमता रखने वाला अन्य साधन मीडिया है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाचार–पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन और फिल्मों में हिन्दी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हो रहा है। खासकर पत्रकारिता के क्षेत्र में परिनिष्ठित अथवा परिष्कृत हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजुनमा हिन्दी का अधिक प्रयोग हो रहा है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण हमें **मृणाल पाण्डे** कृत **'अपनी गवाही'** उपन्यास में नायिका कृष्णा के चरित्र से संबंधित प्रसंगों में प्राप्त होते हैं। सबसे ज्यादा बिकने वाला अखबारों या सबसे लोकप्रिय टी. वी. कार्यक्रम या फिर विभिन्न क्षेत्रों की पत्रिकाएँ, सभी देसी भाषाओं की ही थी। अब इन सब में फिल्म ———आदि के केंद्र में भाषायी मीडिया के मालिक थे। लेकिन अभी भी **मीडिया संस्थानों** का सारा कामकाज, सारा एजेंडा अंग्रेजी तय करती थी और इन अखबारों और टी. वी. कंपनियों के कर्ता–धर्ता स्वयं न तो भाषाई अखबारों को पढ़ते थे, न भाषाई टी.वी. कार्यक्रम देखते थे।"[3] अंग्रेजी के इस वातावरण में भी अपनी छाप बनाये रखने में सफलता पाने वाली कृष्णा जब टी. वी. चौनल के लिए काम करने जाती है तो पहले दिन ही वह महसूस करती है "हिन्दी डेस्क के गुमनाम अनुवादकों को छोड़कर दफ्तर का कोई भी बन्दा हिन्दी में गिनती नहीं गिन सकता था। वह जहाँ भी नहीं नजर डालती उसे हर कहीं रोमन अक्षर ही दिखाई देते। हिन्दी न्यूज्मेकार सिस्टम हो या और कहीं, अंग्रेजी ही का राज था। और उसे लगता की खटमलों की तरह रोमना अक्षर उसकी आँखों, कानों, नाक और बाहों पर चढे आ रहे हैं। वह हिन्दी को ठीक–ठीक करने और पूरे बुलिटन को अपनी जुबान में पेश करने के लिए तरसने लगी।"[4]

राजानैतिक क्षेत्र के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा थोड़ी सी व्यवस्थित ही है उनके वक्तव्यों के श्रोता उन्हें सुनकर अपनी भाषा को सुधार सकते हैं। **सुधीर निगम** कृत **'धर्मात्मा विभीषण'** उपन्यास के राजनैतिक क्षेत्र के ही व्यक्ति हैं। हिंदू पौराणिक पात्र होने के कारण उनकी संस्कृत निष्ठ भाषा सहृदय पाठकों को अत्यंत प्रभावित करती हैं। निम्न लिखित उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनैतिक क्षेत्र में प्रस्तुत होने वाली ऐसी भाषा का समसामाजिक समाज के लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। विभीषणा कला से कहते हैं "सुनने की इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण करना, तर्क–वितर्क द्वारा सिद्धांत का निश्चय करना, अर्थ का ज्ञान होना, तत्व को समझना और वक्तृत। इन आँठों गुणों को फलीभूत करके उनमें समंजन स्थपित करना ही बौद्धिक अनुशासन है। तभी बुद्धि निश्चय और निर्धर्ण के मुख्य कार्य करती है।[5]

संस्कृति मानव को समाज से सीखा हुआ वह व्यवहार है जो उसके द्वारा पीढी–दर–पीढी सौंपा जाता

है। संस्कृति व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कार्यरत रहती है। यानी संस्कृति का संबंध व्यक्ति के सामाजिक जीवन से होता है। सभ्यता का भौतिक पक्ष मानी जाने वाली संस्कृति मानव को विकास की ओर ले जाने में अग्रसर रहती है। 21वीं सदी में भारत के अंतर्गत व्याप्त सभ्याता और संस्कृति के विकृत रूप को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की दिशा में नई सदी के लोकप्रिय उपन्यासकार **रणेंद्र** कृत **'ग्लोबल गाँव के देवता'** उपन्यास का यह प्रसंग विशेष उल्लेखनीय है "समझ में ही नहीं आ रहा है कि हम वैदिक काल में हैं कि 21वीं सदी में। वर्तमान अतीत में ढलता जा रहा था और अतीत की कत्ल–ओ–गारत वर्तमान में नजरों के सामने नाच रही थी। वह क्या था जिसके कारण एक समुदाय बहुसंख्याक समुदाय के लिए 'अन्य' में तब्दिल हो गया। हमसे अलग, 'अन्य', एक शत्रु। चूँकि उसके जीवन–यापन का तरीका हमसे भिन्न था, इसलिए वह हत्या के योग्य, गालियाँ देने योग्य कैसे हो गया? आग की खोज, धातु पिघलाने की कला किन्हीं को इतनी बुरी क्यों लगी कि इस करिगर जाति को बार–बार आक्रमणों में नष्ट होने और पीछे हटने के लिए मजबूर होना पडा ... बदहाल जिंदगी गुजारती, संस्कृतिविहीन, भाषाविहीन, साहित्यविहीन, धर्मविहीन।"[6]

प्रस्तुत उद्धरण से सहुदय पाठकों को यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान भरत में निम्न वर्गीय लोगों को किस प्रकार परेशान किया जा रहा है। वास्तव में निम्न वर्ग के इन्हीं लोगों की महनत के अधार पर सशक्त समाज का विकास संभव होगा। परंतु दुर्भग्य की बात यह है कि इन्हीं लोगों को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसके पश्चात **नरेंद्र कोहली** कृत **'न भूतो न भविष्याति'** उपन्यास का यह प्रसंग उल्ल्ख्नीय है जिसमें उपन्यास के नायक स्वामी विवेकानंदा कहते हैं "भारत में सर्वश्रेष्ट होने की योग्यता है, जगतगुरु बनने की क्षमता है, हमारा देश संसार का कीर्तिस्तंभ है। किंतु हमारे ये तथाकथित नेता, ये मूर्ख और स्वार्थी नेता, अपनी प्राचीन संस्कृति का वैभव नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ये लोग उन सुधरों का प्रचार कर रहे हैं, जिससे उनकी जयजयकार हो, किंतु देश का गौरव नष्ट हो जाए। ये अपनी संस्कृति और उसके गुणों को समझे बिना उसमें सुधार का दुस्साहस कर रहे हैं। हिंदुओं का आध्यात्मिक विकास न कर, हिंदू धर्मको सामी मतों के साँचे में ढलने को ही अपना गोरव समझ रहे हैं। जो आदर्श कभी अपने जीवन में अवतरित नहीं कर पाए, उनका प्रचार कर रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता की चमक–दमक और अल्पकलिक शक्ति से अंधे हो कर, अपने जातीय अनुभव को उठाकर समुद्र में फेंक रहे हैं।"[7]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान भारत के विकृत यर्थाथ के साथ–साथ उसमें परिव्याप्त विडंबनापूर्ण स्थितियों का नई सदी के हिन्दी उपन्यासों में व्यापक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। संबंधित कथाकारों ने भारत के इस यथार्थ को सुधार ने को उपाय बताते हुए सहृदय पठकों में सकरात्मक चिंतन प्रचलित करने का सफल प्रयास किया हैं। उन्होंने यह भी चेष्टा की है कि भारत के नागरिकों मैं आदर्श मानव मूल्यों का उन्नयन संभव हो जिससे भारत की स्थिति सुधरकर उसके प्रत्येक नागरिक को सुखमय जीवन प्राप्त हो सकें। प्रस्तुत निबंधके सीमित कलेवर में इन्हीं तथ्यों को प्रकाश में लाने का लघु प्रयास किया गया है। इसमें कोई शक नहीं है कि राष्ट्रीय स्थर पर भारत वर्तमान युग में जिन चुनौतियों का सामना कर रही है उन्हें शांत करने अथवा उनका समाधान करने में वर्तमान हिन्दी उपन्यास पूर्णतय सक्षम हैं।

संदर्भ सूची :-

1. सुधीर निगम : धर्मात्मा विभीषण (उपन्यास), ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ट संख्या–83
2. डॉ. एस. कृष्ण बाबु : साहित्यिक अवधारणाएँ सामयिक सन्दर्भ, अमन प्रकाशन, राम बाग, कानपुर, प्रथम संस्करण–2020, पृष्ट संख्या–38
3. मृणाल पण्डे : अपनी गवही (उपन्यास), राधा कृष्ण प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृष्ट संख्या–115
4. मृणाल पण्डे : अपनी गवही (उपन्यास), राधा कृष्ण प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृष्ट संख्या–159
5. सुधीर निगम : धर्मात्मा विभीषण (उपन्यास), ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ट संख्या–62
6. रनेंद्र : ग्लोबल गाँव के देवता (उपन्यास), ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण–2016, पृष्ट संख्या–33
7. नरेंद्र कोहली : न भूतो न भविष्याति (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृष्ट संख्या–402

मोबाइल 7396178644, 9553288568

masumefathima786786@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 35-38

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत–इंडानेशिया : समृद्ध इतिहास एवम् नवीन भविष्य

डॉ. पुनीत कुमार पण्डया

इंडोनेशिया, भारतीय एवं प्रशांत महासागर के बीच स्थित है। इस देश को द्वीपों का देश भी कहा जाता है। इस पृथ्वी पर यह एकमात्र ऐसा देश है, जहां सहस्त्र दीप है और यह देश इन पर बसा हुआ है। यह विशेषता इसे दुनिया का सबसे बड़ा द्वीप देश बनाती है। यूनानी भाषा के शब्द इंडोस एवं नेनोस से मिलकर इंडोनेशिया शब्द का निर्माण हुआ। जिसका अर्थ है भारतीय द्वीप। यह नाम स्वतंत्र इंडोनेशिया के गठन से पूर्व से प्रचलित था। कई अंग्रेज इतिहासकारो ने इसे भारतीय द्वीप समूह अथवा मलय द्वीप समूह के रूप में अपनी पुस्तक में उल्लेखित किया है। भारत इंडोनेशिया का संबंध अत्यंत प्राचीन हैं। कई इतिहासकार इसे प्रथम शताब्दी से प्रारंभ हुआ मानते हैं। यह संबंध व्यापार, संस्कृति एवम शिक्षा के आदान–प्रदान के रूप में फलता फूलता रहा है जिसका प्रभाव वर्तमान में भी देखा जा सकता है। भूतकाल पर दृष्टिपात करें तो श्री विजय नौसैनिक, शैलेंद्र, हिंदू मातरम एवं तेरहवीं शताब्दी के अंत तक हिंदू मजापहित साम्रज्य की स्थापना हुई थी। इस साम्राज्य का प्रभाव वर्तमान इंडोनेशिया के अधिकांश हिस्सों में आज भी फैला हुआ है । इस अवधि को इंडोनेशिया के इतिहास में 'स्वर्ण युग' के नाम से भी जाना जाता है।

प्राचीन समय से हिंदू एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव इंडोनेशिया पर रहा है। यह प्रभाव आज भी बहूयात से इस देश के कई द्वीपों पर देखने को मिलता हैं। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि इंडोनेशिया में इस्लाम का आगमन 12वीं 13वीं शताब्दी में हुआ। प्रमुख व्यापार केंद्र होने के कारण अरब व्यापारियों के आगमन के साथ यह बढ़ता गया। अरब व्यापारियों के व्यवहार, रहन–सहन एवम नेक दिली इत्यादि अनेक कारणों से यह धर्म इंडोनेशिया के प्रमुख व्यापारिक द्वीपों पर फैला। हिंदू एवं अन्य संप्रदाय के लोगों में यह धर्म तेजी से फैला इसका एक अन्य कारण सूफीवाद भी रहा। सूफी संतो के आगमन – विचारधारा का प्रभाव स्थानीय समुदाय के लोगों पर पड़ा जिससे इस देश में समय के साथ इस्लाम एक प्रमुख धर्म बन गया । मार्कोपोलो ने 12वीं शताब्दी से पूर्व इस्लाम के उदय होने की जानकारी दी है।

इंडोनेशिया के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है प्राचीन काल से ही यहां हिंदू, बौद्ध, कन्फ्यूशियस, इस्लाम एवं ईसाई संस्कृतियों का प्रभाव रहा। कई शताब्दियों तक विभिन्न धर्म एवं संस्कृतियों की छाप इस देश के स्थानीय समुदाय पर रही। यही कारण है कि यह देश सभी संस्कृतियों के प्रभावों को अपने में समेटे हुए हैं। वर्तमान इंडोनेशिया में उपरोक्त सभी संस्कृतियों के प्रभाव को निश्चित रूप से देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर जवानीजअंगबान विश्वास (हिंदू एवं इस्लाम संलयन), बाली नृत्य (हिंदू – बौद्ध)

इस्लामिक कला वास्तु (मिनांगका बाऊ एवं अन्य) डनगडूट (अरब मलय फ्यूजन) आदि।

इंडोनेशिया एक ऐसा देश है जिसकी विस्तृत सांस्कृतिक एवं कला विविधता भारत के अलावा अन्यत्र पूरी दुनिया में कहीं और देखने को नहीं मिलती है। प्रस्तुत पत्र इंडोनेशिया की इसी सांस्कृतिक विरासत एवं समृद्धता को समझने एवं भारत के साथ उच्चतर सांस्कृतिक शैक्षिक संबंधों पर चिंतन स्वरूप लिखा गया है –

* इंडोनेशिया एक ऐसा संपूर्ण देश जो विविध संस्कृतियों एवं उनके अवशेषों एवम् जीवन्तताओ को अपने में समेटे हुए हैं । यही समृद्धता भारत में भी दृष्टिगोचर होती है। इस रूप में दोनों देश एवं उनकी संस्कृतियां प्राचीन काल से सामंजस्य के रूप में स्थापित रही हैं।

* रामायण–महाभारत के अनेकानेक प्रसंग जिनका प्राचीन इंडोनेशिया से गहन संबंध रहा है, कई इतिहासकारों की पुस्तकों में उल्लेखित है। जो दोनों ही देशों के मध्य अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध सांस्कृतिक शैक्षिक आवागमन का परिचायक है।

* आंकड़ों के अनुसार इंडोनेशिया विश्व की सर्वाधिक मुस्लिम बाहुल्य आबादी वाला देश है। जबकि भारत दूसरा बड़ा मुस्लिम आबादी वाला देश है। इस्लाम का उदय अरब प्रायद्वीप में विकसित हुआ। लेकिन वह हजरत मोहम्मद (570 से 632 ईसवी) के मध्य ही भारत में आ चुका था। भूतकाल से ही इस्लाम हिंदू धर्म के साथ बहुत गहरे सांस्कृतिक आदान–प्रदान के रूप में विकसित हुआ। यह समन्वय हमें भक्ति आंदोलन एवं सूफीवाद में – दृष्टिगोचर होता है। भारत की यही सांस्कृतिक विशेषता इंडोनेशिया की संस्कृति में भी दिखाई देती है।

* 90 फीसदी मुस्लिम आबादी वाले इंडोनेशिया पर रामायण एवं इसके विभिन्न चरित्रों यथा श्री राम, सीता, हनुमान एवं रावण की अमिट छाप है। इसके साथ ही महाभारत की भी अमिट छाप इस देश पर दिखाई देती है। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक एवं विद्वान कामिल बुल्के (1982) ने अपने लेख में लिखा है कि मेरे एक मित्र ने जावा के किसी गांव में एक मुस्लिम शिक्षक को रामायण का अध्ययन करते देख पूछा कि आप रामायण क्यों पढ़ते है? उत्तर मिला "में और अच्छा मनुष्य बनने के लिए रामायण पढ़ता हूं।" इतिहास में देखें तो रामायण का इंडोनेशियाई संस्करण सातवीं शताब्दी के मध्य जावा भूभाग में लिखा गया था। तब यहां मैदांग राजवंश का शासन था। यह भी सत्य है कि रामायण के इंडोनेशिया में आने से पूर्व ही रामायण में इंडोनेशिया आ चुका था। किष्किंधा कांड में वर्णन है कि महाराज सुग्रीव ने सीता की खोज में अपने दूतों को यवद्विप और सुवर्णदीप पर भेजा था। वर्तमान में यही जावा व सुमात्रा है।

* यह अत्यंत हर्षमय एवं आश्चर्यजनक है कि दुनिया के अति विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र एवं इस्लामिक राष्ट्र में श्री राम एवं रामायण का गहरा प्रभाव है। अपने बालकों के नामकरण में भी इस देश में हिंदू संस्कृति का साक्षात प्रभाव नजर आता है और ऐसा इसलिए भी है कि जनमानस ने अपनी हृदय की विशालता के समक्ष धार्मिक रूढ़िवादिता को कभी आने नहीं दिया। कई बार विविध आयामों– पहलुओं से अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि यह देश एवं इसके निवासी जीवन की सार्वभौमिक वास्तविकता एवं आदर्शों को मानने वाले हैं। वह जड़ता – रूढ़िवादिता में विश्वास नहीं रखते हैं । यही कारण है कि वर्तमान में यह देश विविध भारतीय सांस्कृतिक विरासतों की जीवंतता को अपने में समेटे हुए हैं।

* जिस प्रकार भारत ने गंगा जमुना तहजीब एवं अन्य धर्मों के साथ सामंजस्य का जो उदाहरण विश्व के

समक्ष प्रस्तुत किया। ठीक वही उदाहरण इंडोनेशिया ने एक इस्लामिक राष्ट्र होते हुए भी वर्तमान में हिंदू बौद्ध धर्म के साथ एवं अन्य धर्मों के साथ सामंजस्य के रूप में विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है। ''समस्ता लोका सुखिनो भवंतु'' एवं ''वसुधैव कुटुंबकम'' के इस आदर्श को विश्व की दो बड़ी धार्मिक संस्कृतियों यथा हिंदू एवं इस्लाम द्वारा वर्तमान में संयोजन करना, संरक्षित करना एवं तद्नुरूप व्यवहार में लाने का यह उदाहरण पूरे विश्व में के समक्ष सम्माननीय, अनुकरणीय एवं वंदनीय है।

* पिछले कुछ दशकों में दोनों ही देशों के राजनीतिक व्यवहारों पर नजर डालें तो पता चलता है कि इंडोनेशिया की प्रथम राष्ट्रपति सुकरणों हमारे प्रथम गणतंत्र दिवस 26 जनवरी 1950 में मुख्य अतिथि के रुप में आमंत्रित थी। भारत की 2011 की यात्रा दरमियान इंडोनेशिया के राष्ट्रपति युधोयोनो एवं भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दोनों देशों के बीच पारस्परिक संबंधों की विरासत को आगे बढ़ाने हेतु कई समझौते किए जिसमें राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं शिक्षा मुख्य थे। कुछ ही समय पूर्व ही उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने कहा था की हम इंडोनेशिया के कलाकारों को भारत में उत्तर प्रदेश में रामलीला कार्यक्रम में आमंत्रित करते हैं। समय के साथ दोनों ही देशों की उपासना पद्धति भले ही भिन्न हो गई हो परंतु आज भी हमारी मूल भावना एक ही है । मुख्यमंत्री योगी जी ने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के मार्गदर्शन में भारत इंडोनेशिया विभिन्न सांस्कृतिक शैक्षिक संबंधों को आगे बढ़ाया जा सकता है । हम हमारे यहां विभिन्न आयोजनों में इंडोनेशिया के मंत्रियों के नेतृत्व में विभिन्न सांस्कृतिक दलों का स्वागत करना चाहते हैं। इंडोनेशिया देश हमारी प्राचीनतम सांस्कृतिक विरासत का निकटतम सहयोगी है। दोनो देशों के मध्य राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिकसंबंधों को ऊंचाई देने में हमारी साझा संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

शिक्षा किसी भी देश के विकास का अहम हिस्सा होती है। शिक्षा के द्वारा स्वयं अपने देश में एवं अन्य देशों के साथ भी सहसंबंध कर विकास की नई ऊंचाइयों को छुआ जा सकता है । अंकिता चक्रवर्ती (2018) ने अपने शोध पत्र में उल्लेख किया है कि इंडोनेशिया से छात्र भारत में स्थित नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने आते थे । जकार्ता पोस्ट (2015) ने भी इस बात का उल्लेख किया था कि इंडोनेशिया से छात्र भारत के नालंदा विश्वविद्यालय में अध्ययन करने आते थे। छात्रों विद्वानों की देखरेख एवं भरण–पोषण के लिए स्वर्णदीप के राजा देवपाला ने नालंदा के एक मठ के रखरखाव के लिए 5 गांव प्रस्तुत किए थे।

वर्तमान में भी भारत एवं इंडोनेशिया द्वारा इन शैक्षिक संबंधों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। दोनों ही देश अपने विद्यार्थियों विशेषतः कला, साहित्य, भाषा एवं अन्य विधाओं के अध्ययन हेतु आवागमन के नए रास्ते खोल सकते हैं–दोनों ही देश आपसी सहायता से अपने देश में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सेल अथवा संगठन की स्थापना कर विद्यार्थियों हेतु विकास के नए आयामों का निर्माण संभव कर सकते हैं। इस रूप में विद्यार्थी दोनों ही देशों की संस्कृति एवं साहित्यिक गतिविधियों के आदान–प्रदान का माध्यम बन सकते हैं। विद्यार्थियों का यह आवागमन दोनों ही देशों के मध्य आपसी लगाव एवं मित्रता के संबंधों को और ज्यादा घनिष्ठता दे सकता है। इसके अलावा दोनों देशों की सरकारों द्वारा अपने–अपने देश में विभिन्न शहरों अथवा स्थानों पर कला व साहित्य केंद्र खोलकर रोजगार के अवसरों को भी उपलब्ध करवाया जा सकता है। इससे दोनों ही देशों के मध्य कला साहित्य एवम संस्कृति का आदान प्रदान एवं विकास हो सकेगा। निश्चित रूप से आपसी सौहार्द एवं विकास के नए संबंधों के नवीन पथ का निर्माण हो सकेगा।

संदर्भ :–

1. अरोरा बी. डी. (1981) : इंडियन इंडोनेशियन रिलेशन, एशियन एजुकेशन सर्विसेज नई दिल्ली।
2. बरूहा, अमित (2001) : अबूस्ट टू रिलेशंस विद इंडोनेशिया।
3. टेलर, जीन गेलमैन (2003) : इंडोनेशिया के लोग और इतिहास। आईएसबीएन 0–300–10518–5.
4. अंकिता चक्रवर्ती (2018) : फ्रॉम द पेजेज ऑफ हिस्ट्री टू कन्टेम्पररी पिरियड्सः अ स्टडी ऑफ इण्डिया–इण्डोनेशिया रिलेशनशिप, लिंगुआ, वॉल 15, नोमोर 1, जनवरी 2018
5. रमेश पोखरियाल (2020) : भारतीय संस्कृति का संवाहक इंडोनेशिया, भारत प्रकाशन, नई दिल्ली

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 39-49

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

How Drama Rehearsals Impact the Expression of Emotions in Children: A Study

Radhika Pendse1and Dr. Sanyukta Thorat2

[1] PhD Research Scholar, Department of Fine Arts, RTM Nagpur University, Nagpur
Plot no. 3, Shivam Society, Ramkrishna Nagar, Wardha Road, Nagpur – 440015.
[2] Supervisor, Head of the Department, Department of Fine Arts, RTM Nagpur University, Nagpur.

Abstract

Drama is a performing art, performed through words, actions, makeup, costumes and emotions. Expressing only with words, actions, makeup and costumes without emotions is like a fruit bearing tree with leaves, branches, trunk but no fruit. Drama is all about storytelling in present tense, as if, things are happening in front of the audience. Like every action is followed by words, every word is followed by emotions and every emotion has a story to tell. Every story has a seed that carries emotion in the mind of the writer. It grows into a tree only when it is "expressed". Drama is an expression, where an actor expresses through action, words and emotions. Drama rehearsal helps to act, create and perform and then repeat it until the desired result is achieved. Thus, drama rehearsals help the students of dramatics to express through emotions while they play the character and thus apply this art in their daily lives. Effective expression of emotions adds to their life skill development.

Keywords

Children, Students, Drama, Rehearsals, Voice, Speech

Introduction

Drama rehearsals are an essential part of drama performance. When an actor performs on stage with confidence, conviction and portrays the given character effortlessly, it is because she has lived the character several times before her performance in front of an audience. Every great actor has explained and acknowledged the importance of rehearsals. Rehearsals not only give one a chance to try, but also give her an opportunity to make mistakes, experiment, learn and improve. It gives her time to understand her character, the situation in the drama, other characters involved and the story of the script.

Students of dramatics understand that theatre is all about narrating a story (script) in the form of drama. Drama is performed with the help of speech, makeup and get-up, hand and body movements, and expression of emotions. Expressing it with emotions is an integral and one of the most important parts of the drama. Story moves ahead with the help of actions, movements dialogues and expression of emotions. Emotions are integral and an important part in the communication and that is where rehearsals help children to express themselves effectively.

Speech consists of spoken words, words with sounds and sounds carrying emotions. Words rendered in a drama are called dialogues, a collection of dialogues with a plot is called a script. It is written by the writer, directed by the director and performed by the actor. A good script has a plot with shades of different emotions and when an actor expresses these emotions with utmost sincerity, it creates an impact on the audience. In this case study, the student is the actor and the director & writer is the teacher. We are observing the impact on expression of emotions during the rehearsals in children in the age group of five to eleven years.

1.1 Emotions in drama

Drama is an art form where a story is effectively communicated with the help of characters having different personalities and conveyed in the present tense, as if it is happening in front of the audience. The personalities are different, with different

physical, mental, emotional and psychological state, different age, gender and culture. The emotions they express vary depending on the situation and circumstances, their state of mind, time and place they are in. Expression of emotions plays an important role in drama and rehearsals help students understand it.

Personalities of characters dwell in different emotions or rasas. Great poet Bharat Muni has explained and categorised emotions through the nine rasas ("navarasa"). These Navarasa are nine emotions; rasa means emotional state of mind. The nine emotions are Shringar (love/beauty), Hasya (laughter), Karun (sorrow), Raudra (anger), Veera (heroism/courage), Bhayanak (terror/fear), Bibhatsa (disgust), Adbhut (surprise/wonder), Shant (peace or tranquility). These when expressed in drama have a profound effect on the minds of the actor and the audience.

1.2 Impact on the Minds of Children

Children's mind is curious. They are always on the journey of learning, grasping and experimenting. When drama is expressed in the form of emotions, children as actors go through different emotions. They experience emotions, by getting introduced to the nine rasas. The introduction is done with the help of theatre games and practically by rehearsing the emotions that are to be expressed in a scene/situation of the drama. Human beings are familiar with four basic emotions of love, anger, ego and fear. These are expressed in early childhood, even at birth. The other five from the nine rasas are new to children. Impact that is seen on the minds is profound, giving birth to many questions and doubts. The rehearsal helps them understand the emotions better and in the process of action and reactions they find their answers. With the help of teachers, they seek affirmation of what they are feeling.

2 Methodology

2.1 Objective

To see the impact on expression of emotionsin children before and after the drama rehearsals.

2.2 Sample

Thirty-six students from the age group of five to eleven years, who are willing to do rehearsals were chosen for this experimental research and participated in the rehearsal of Hindi two-act play "Siyavar Ramchandra Kee Jai!", the story of Prabhu Shree Ram, husband of Sita who along with his army defeats the evil demon,Ravan. All children are from Pune, Indiaand will rehearse for fifty days, approximately hundred hours in total, of which about 30% sessions are completed at this stage. During the rehearsals, theatre games are played, story is narrated, scenes are explained, dialogues are learnt and delivered. The experiment is donein a controlled and guided environment with me as their drama teacher.

2.3 Characteristics of children considered for studies

* Age range: 5 to 11 years
* Gender: Male and female
* Culture and tradition: Children from different states within Indiahaving different cultural values.
* Behaviour: extrovert, introvert and ambivert
* Impaired speech: Children who have stammering or other difficulty in speech
* Psychological profile: Having stress, trauma, depression, hyperactivity
* Demography: Children are from Pune and living in the same apartment complex.
* Children low on confidence.
* Those wanting to have fun while learning
* Children keen to experiment, exercise and experience the magic of speech and drama.

2.4 Why "Siyavar Ramchandra kee Jai" script was chosen

"Siyavar Ramchandra kee Jai" children's two-act play was written by me. Story of Prabhu Shree Ram has a superb ensemble of characters and events that renders itself to expression of all navarasas. It has all the ingredients to make it entertaining and

teaches moral values, ethics. Story of Ramayan is passed on from generations to generations and is valued to be the epitome of righteous living. It covers spirituality, politics, history, philosophy and psychology. The script and dialogues are written keeping the age of students in mind.

To understand the impact of expression of emotions, students are put through a sequence of seven steps during rehearsals.

2.5 Theatre Games

There are different types of emotions. However, to make the students understand what type of emotion it is, I had two options. One is to explain the theory of "navarasas" as defined by Bharat Muni. The other approach was to use theatre games to make them experience and enact the emotions and then explain to them about the rasa they just experienced. I chose the latter approach.

2.5.1 Step 1: Game one

After the students know each other and are friends and find a comfort zone to start sharing ideas and experiences, they are organized in pairs. They are asked to share two moments in their life; their saddest and happiest moments. The students then tell the class about their partner's experience. Once this is done, the studentsare asked how they felt and what changes they observed in their voice, facial expressions, body and mind. The game makes them aware about two strong yet simple to understand emotions of happiness and sadness and how these emotions feel.

	Moment description	How the student felt
Student 1	Dog passed away	Sad and cried a lot
Student 2	Got the bicycle I wanted as a surprise gift	Happy and loved

Table 1Shringar and Karun Ras Examples

2.5.2 Step 2: Game two

Students are put in groups of four and asked to discuss about the places where they felt disgust, fearful, surprisingly wonderful or peaceful. After listening to each other and every student sharing atleast one incident pertaining one of the above 4 types of places, they are brought together to discuss with other students. Students are asked to narrate how the place looked like, how did they feel and what did they do.

	Place description	How the student felt
Student 1	Big garbage pile in the open on roadside	Disgusted
Student 2	Friends talked about haunted house in a village during bonfire on a picnic	Afraid
Student 3	Roller coaster ride in an amusement park	Surprised and thrilled
Student 4	Visited a temple where Om chants were in progress	Peaceful and calm

Table 2Bibhatsa, Bhayanak, Adbhut and Shant Rasa Examples

2.5.3 Step 3: Game three

Students are put in groups of eight and asked to think of characters on television, people they have met who were either funny, courageous or angry. They are then asked to explain to the entire group of thirty-six students. Stress is laid on explaining how they looked, what they said, how they said it and what was their reaction to the person or character's behaviour.

	Character description	How the student felt
Student 1	My uncle who always cracks jokes	Funny
Student 2	Watching movie Tanhaji	Courageous
Student 3	Our class bully	Angry

Table 3Hasya, Veera and Raudra Rasa Examples

2.5.4 Step 4: Game four

Playing above three games, students not only interacted with each other but tried to understand, empathised and then reacted by further discussing the experiences. Then came the part of emoting one of the incidences, improvising, imitating the person they narrated in game three. This time the groups contain twelve students.

Figure 1 Expressing Various Emotions

2.5.5 Step 5: Script reading

Students are made to listen to the script narrated by the teacher. Initially, they are not asked to read by themselves because reading skills are not yet developed.Moreover, it helps to concentrate better when the teacher narrates. Teacher dramatizes every character and situation and reads as if she is playing every character so that it becomes easier to visualise. After every scene is read, students are asked "Wh (what, when, why, who) questions". Now students are asked to identify the situations/events in comparison to the findi

ng of game one, two, three and four. Looking at every emotion they felt, they slowly relate to the navarsas and identify the rasas expressed in the script.

Figure 2Siyavar Ramchandra Kee Jai Script Cover Page

2.5.6 Step 6: Identification

Identifying situations/scenes and characters where a particular rasa is dominant.

Situation in the play	Rasa	Character portraying it
Rama's marriage to Sita	Shringar	Rama and Sita
Ravan's servants trying to wake Kumbhakaran up	Hasya	Kumbhakaran and servants
Injured Jatayu dies in Rama's lap	Karun	Rama and Jatayu
Shurpankha curses Rama and Laxmana that she will take revenge for her insult	Raudra	Shurpankha
Rama killing demon Tratika	Veera	Rama
Ravan shows his real self to Sita after she crosses Laxman rekha	Bhayanak	Ravan
Samudra rakshasa stops Hanuman	Bibhatsa	Samudra rakshasa
Rocks float on the surface of the sea water when setu is being built	Adbhut	Vanar sena
Rama doing meditation in Vatika	Shant	Rama

Table 4 Table of Emotions – Siyavar Ramchandra Kee Jai

2.5.7 Step 7: Roleplay and Rehearsals

Once they know the scene and the rasas, students are asked to choose a character they like or feel closer to. They are given a free hand to read the dialogues. Students are chosen by the teacher considering their willingness to perform, physique and capability. Once identified, the real process of rehearsal starts where students get better understanding, try something new, repeat it, try doing it differently and finally master the performance. Rehearsals also give chance to observe other students playing different characters. They learn from each other. They also learn from their mistakes andcorrect them during rehearsals.

2.6 Confidentiality and consent

Consent was taken from the subjects before research. All the personal records are kept confidential.

3 Study Area

Study has been conducted with the students of a school in Pune, Maharashtra. The area selected is urban with diverse cultures.

4 Results and Discussion

As a drama teacher, I have noticed improvements in students' expression of emotions because they have a better understanding. During and after rehearsals, they are motivated to think about cause and effect, action and reaction. Students who were not introduced to the emotions before now recognise them and then express them effectively with practice and observation. Although they learnt, understood, experienced emotions, we cannot completely say that they know all the emotions and can now handle them in their life. Understanding emotions, familiarising is an ongoing lifelong process and as the child matures, he/she can dive deep into the emotions. The process can be continued through repeated exposure to drama rehearsals. Emotions chart explains how emotionsareintertwined with one another. How a dominant emotion is the result of subtle, gradual shift of emotions. E.g.,if nobody plays with a school boy, he might feel hurt, lonely, vulnerable and depressed. A boy who has always enjoyed company of his friends may not understand this emotion easily.The steps involved would need either experience, observation or maturity. It is a general tendency of humans to replicate what they have learnt. The picture of one of my students depicts how he compares Hanuman with doctor who also helps us during difficult times.

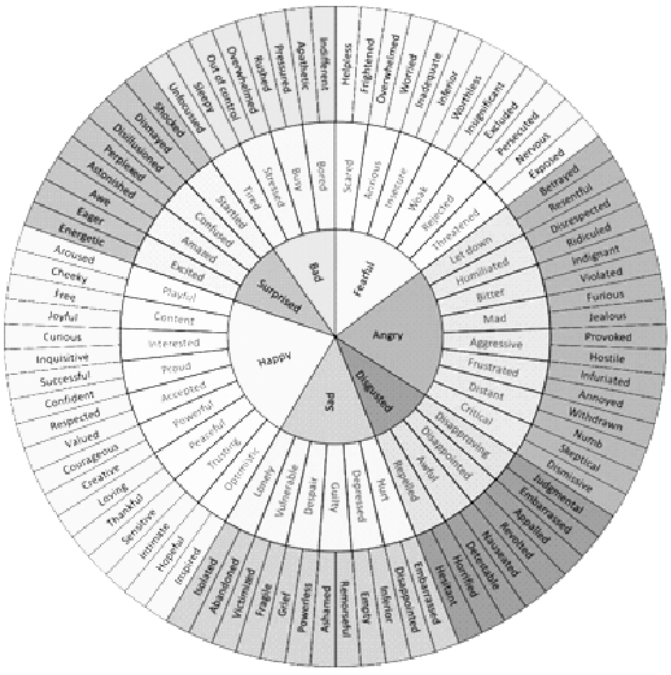

Figure 3The Emotion Wheel

Figure 4 Role Play of Different Characters

5 Conclusion

After the process of rehearsal, children love to perform role plays and express them with emotions. They love to enact situations and emotions that are new and challenging. They also love to express emotions from their livesand experience the reaction of others. They do love to rehearse and perform drama because ultimately it gives a sense of freedom, dive into an emotion and come back to normal. It works as a stress buster. All in all, it gives happiness and pleasure that can be shared with others.

While introducing emotions to the students, the teacher must not label it with rasas. The approach involves lettingthem experience the emotion first and then tell them which rasa it was. Drama helps to bring out what is already inside you. The teacher's role is to just let the students experience emotions that are already inside them, only hitherto unexplored. Experiencing different emotions makes one's life richer and fuller. Children's minds are like a clean slate. It is therefore not only important what is taught but also how it is taught because children are our future who will contribute to shape up our nation, our people. Importance of expression of emotions is one of the most important lifeskills that can be nurtured, cultivated and practised by performing it.

6 References

1. Deshpande, Radhika. (2021) Siyavar Ramchandra Kee Jai. Radhika Creations.
2. Lagoo, Shriram Dr. (2017) Vachik Abhinay. Rajhans Prakashan.
3. Mehta, Vijaya. (2012) Zimma, Athvanincha Goph. RajhansPrakashan.
4. Paikaray, Trupti. (2020, October 18). Navratri is the festival to control nine emotions. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/tea-with-life/navratri-is-the-festival-to-control-nine-emotions/
5. Roberts, Geoffrey. (2015, March 15). Emotion Wheel. https://imgur.com/a/CkxQC

7 Acknowledgements

I acknowledge Shri. Shyamrao Joshi, who has been a guiding light for me in all my endeavours. I have found immense help as he has shared the knowledge that he has gained through his own teaching experience.

I acknowledge Shri. Sanjay Pendse, my father and my guru who has taught me the basics of drama and whom I have watched teach drama to children over the years. He has been my best drama teacher ever.

List of Tables

Table 1 Shringar and Karun Ras Examples.....6
Table 2 Bibhatsa, Bhayanak, Adbhut and Shant Rasa Examples.....7
Table 3 Hasya, Veera and Raudra Rasa Examples.....7
Table 4 Table of Emotions – Siyavar Ramchandra Kee Jai.....9

List of Figures

Figure 1 Expressing Various Emotions.....8
Figure 2 Siyavar Ramchandra Kee Jai Script Cover Page.....8
Figure 3 The Emotion Wheel.....10
Figure 4 Role Play of Different Characters.....11

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 50-56

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्मृतियों में दान की अवधारणा एवं महत्व

डॉ0 रागिनी राय, असिस्टेंट प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
ईश्वर शरण पी0जी0 कॉलेज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ऋग्वेद काल से ही दान एवं दानदाताओं की स्तुतियाँ प्रभूत मात्रा में प्राप्त होती है। ऋग्वेद के कतिपय सूक्तों एवं मंत्रों को विद्वानों ने 'दान–स्तुति' की संज्ञा प्रदान की है। इन मंत्रों में सम्पन्न वर्ग द्वारा प्रदत्त 'दान व सामान्य जन द्वारा किये गये 'दान' दोनों की ओर ही संकेत मिलता है। ऋग्वेद में दान की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि दान ऐश्वर्य और सुख प्राप्त करने का उत्तम साधन है। जो व्यक्ति अपने आश्रितों को धन–धान्य से समृद्ध करते हैं, उनकी शुभकामनाओं से दानी की आयु बढ़ती है, जो व्यक्ति दान देकर अपने धन का सदुपयोग नहीं करता, वह सदा ही मानसिक चिन्ताओं और शोक से पीड़ित रहता है। ऋग्वेद में गायों, रथों, अश्वों, ऊँटों, दासियों, वस्त्रों, भोजन, जल, स्वर्ण, चाँदी इत्यादि के दान का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद् में दम, दान और दया का पालन करने की शिक्षा क्रमशः देवताओं, मनुष्यों व असुरों को प्रदान की गई है। ऋग्वेद में क्रमशः दक्षिणा रूप में अश्व देने वालों को सूर्य के द्वारा स्वास्थ्य, स्वर्णदाता को अमरत्व व वस्त्र देने वालों को दीर्घायु प्रदान करने आदि का वर्णन है।

इतिहास पुराण साहित्य में भी दान का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता। महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय 57 से 99 में दान के विभिन्न स्वरूपों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। पुराणों में भी दान–सम्बन्धी साहित्य की विस्तृत परम्परा प्राप्त होती है। धर्मसूत्रों, स्मृतियों इत्यादि में इनका विवेचन होने के साथ–साथ स्वतंत्र रूप से इन विषयों पर ग्रंथ रचना हुई। दान और उत्सर्ग विवेचक धर्मशास्त्रीय वाङ्मय को हम मुख्यतः तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं– (1) धर्मसूत्र, (2) स्मृति ग्रंथ, (3) स्मृतियों की टीकायें एवं भाष्य तथा धर्म के संक्षिप्त नीति–संग्रह अथवा निबन्ध ग्रंथ। दान विवेचक धर्मसूत्रों में मुख्यतः बौधायन धर्मसूत्र , गौतम धर्मसूत्र, वशिष्ठ व विष्णु धर्मसूत्र की गणना की जा सकती है। दान पर प्रकाश डालने वाली स्मृतियों में सर्वप्रथम मनुस्मृति का नाम लिया जा सकता है। इसके उपरांत याज्ञवल्क्यस्मृति, बृहस्पति स्मृति, दक्षस्मृति, बृहद्यस्मृति, व्यासस्मृति संर्वतस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, शातातपस्मृति, वृहत्पाराशर स्मृति, कात्यायन स्मृति, गौतमस्मृति व वृद्ध गौतम स्मृति की प्रमुख रूप से गणना की जा सकती है। स्मृति ग्रंथों पर कतिपय भाष्य एवं टीकायें इस प्रकार की हुई हैं कि विषय–विवेचन के दृष्टिकोण से उनका स्थान स्वतंत्र ग्रंथ से किसी भी प्रकार कम नहीं आंका जा सकता। ऐसे उपलब्ध भाष्य एवं टीकाओं में मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका, याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूप की टीका, मिताक्षरा नामक भाष्य एवं अपरार्क नामक टीका, पराशरस्मृति पर माधवाचार्य की पाराशरमाधवीय टीका आदि

महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त दान विवेचन निबन्ध ग्रंथों में बल्लालसेन का दानसागर, हेमाद्रि के चतुवर्गचिन्तामणि का दानखण्ड, चण्डेश्वर का दानरत्नाकर आदि अनेकानेक प्रमुख ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है। कृत्यकल्पतरू के दानकाण्ड में दान और उत्सर्ग का विवेचन करने वाले निबन्धों व निबन्धांशों की सूची दी गई है।

दान का अर्थ :-

दान शब्द का अर्थ है– ''किसी वस्तु से अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्वत्व उत्पन्न कर देना । दान देते समय दाता ओर प्रतिग्रहीता की शारीरिक और मानसिक स्वीकृति होना आवश्यक था। शारीरिक स्वीकृति देय पदार्थ को हाथ में लेने या स्पर्श मात्र से हो जाती थी। मनु का विचार है कि देय पदार्थ का ग्रहण मात्र ही प्रतिग्रह नहीं है, प्रतिग्रह वही है जो कि विशिष्ट स्वीकृति का परिचायक है। जिसे विधि–विधान और मंत्रोच्चारण के साथ दिया जाये। भिक्षा देते समय मंत्रोच्चारण नहीं किया जाता है, इसलिए भिक्षा शास्त्रविहित प्रतिग्रह नहीं है और न ही स्नेह से मित्र और नौकर को दिया गया पदार्थ प्रतिग्रह है। व्यास के अनुसार श्रेष्ठ दान वही है जिसे शास्त्र विहित व्यक्ति को विधि–विधान एवं मंत्रोच्चारण के साथ, निष्काम भाव से दिया जाये।

ब्राह्मण धर्म में याजन के पश्चात् दान देना एवं दान लेना अथवा प्रतिग्रह आदि मुख्य कर्म हैं। महर्षि मनु के अनुसार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगों में धार्मिक जीवन के प्रमुख रूप क्रमशः तप, आध्यात्मिक ज्ञान, यज्ञ एवं दान हैं। इसीलिये मनु ने गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च माना है कि गृहस्थ मनुष्य ही दान करने में समर्थ होता है तथा अन्य आश्रमों में यह श्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा अन्य आश्रमों के लोगों का परिपालन होता है।

इसी प्रकार स्मृतिकार पराशर ने भी कलियुग में मनुष्यों द्वारा पालनार्थ धर्म के रूप में दान को प्रमुखता दी है क्योंकि कृतयुग में तप की प्रधानता थी, त्रेतायुग में अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता रही, द्वापर युग में भी यज्ञ की प्रधानता थी तथा कलियुग में दान की प्रबलता बताई है। दोनों स्मृतिकारों का मन्तव्य यह नहीं है कि अन्य युग में तप, ज्ञान, यज्ञ आदि का अभाव था अपितु जिस युग में जो धर्म सर्वोपरि रहा होगा, उसकी प्रधानता स्वीकार की गई है।

यज्ञों में दक्षिणा के अतिरिक्त दान भी दिया जाता था तथा बिना यज्ञ के भी दिये गये धन को दान शब्द से अभिहित किया जाता था। मानव का पुरुषार्थ यही था कि भरपूर धनोपार्जन किया जाये और सत्पात्रों में उसका दान किया जाये।

इस प्रकार दान का अर्थ प्राचीनकाल में ही स्पष्ट कर दिया गया था। दान का तात्पर्य है किसी दूसरे को अपनी वस्तु का स्वामी बना देना अर्थात् दान को याग एवं होम से पृथक् माना गया है क्योंकि याग में देवता के लिए वैदिक मंत्रों के साथ कुछ वस्तुओं का त्याग किया जाता है, होम में अपनी किसी वस्तु की आहुति किसी देवता के लिए अग्नि में दी जाती है। अतः इस प्रकार से याग, होम एवं दान में अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

प्रतिग्रह (दान लेना) :-

धर्मशास्त्र में 'प्रतिग्रह' शब्द का विशिष्ट अर्थ होता है। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि का कथन है– 'ग्रहण मात्र प्रतिग्रह नहीं है। उसी को प्रतिग्रह कहते हैं जो विशिष्ट स्वीकृति का परिचायक हो, अर्थात् जब उसे स्वीकार किया जाये तथा दाता को अदृष्ट अध्यात्मिक पुण्य प्राप्त हो और जिसे देते समय वैदिक मन्त्र भी पढ़े जाये। प्रायः स्मृतिकारों के अनुसार भिक्षा में तथा दान में अन्तर होता है। जब कोई भिक्षा देता है तब वह कोई

मन्त्रोच्चारण नहीं करता, अतः वह शास्त्र की दृष्टि में दान नहीं है और न स्नेहवश मित्र या नौकर को दिया गया पदार्थ ही प्रतिग्रह होता है।

इसी प्रकार जब 'विद्या दान' शब्द का प्रयोग होता है तो यहां 'दान' शब्द मात्र आलंकारिक अर्थों में प्रयुक्त है। नहीं तो गुरु को शिष्य के लिए दक्षिणा देनी पड़ जायेगी, किन्तु ऐसी बात युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि वास्तव में शिष्य ही गुरु को दक्षिणा देता है। इसी प्रकार जब किसी मूर्ति को दान दिया जाता है तो वहां भी 'दान' शब्द का प्रयोग अर्थ में है, क्योंकि वास्तव में मूर्ति कोई दान ग्रहण नहीं करती।

महर्षि देवल ने 'दान' की परिभाषा की है– 'शास्त्र द्वारा उचित माने गये व्यक्ति के लिए, शास्त्रानुमोदित विधि से दिये जाने वाले धन का दान कहा जाता है अर्थात् जब किसी व्यक्ति का केवल अपना कर्तव्य समझकर कुछ दिया जाता है तो उसे धर्मदान कहा जाता है।

आदित्य पुराण के अनुसार दान का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है–भुवन त्रय में दान से बढ़कर कुछ भी नहीं है। दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है एवं लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। दान से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है तथा दान से बीमारी दूर हो जाती है। दान से विद्या लाभ होता है तथा मोक्ष मिलता है।

दान का अधिकारी :-

स्मृति–ग्रन्थों में दान विधि को विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है, परन्तु अपात्र अथवा अयोग्य व्यक्ति को दान देने का निषेध किया गया है। जहां धनी व्यक्तियों एवं राजा द्वारा धनार्थियों को दान दिया जाता था वहां गुरुकुलों और शिक्षा–संस्थानों को चलाने वाले गुरुओं को अनुदान भी दिये जाते थे।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ब्राह्मण को अपने योगक्षेम अथवा जीविका एवं रक्षण के लिए राजा या धनिक जन के पास जाने का विधान किया गया था। मनुस्मृति का मत है कि क्षुधा पीड़ित होने पर विप्र को राजा या अपने शिष्य या फिर सुपात्र के यहां जाना चाहिये। यदि उपर्युक्त तीन प्रकार के राजा, शिष्य या इच्छुक सुपात्र दानी न मिले तो अन्य योग्य द्विजातियों के पास जाना चाहिये।

यदि यह भी सम्भव न हो तब ब्राह्मण किसी से भी यहां तक कि शूद्र से भी दान ले सकता, किन्तु शूद्र से दान लेकर यज्ञ या अग्निहोत्र नहीं करना चाहिए, नहीं तो आगामी जन्म में वह चाण्डाल होगा। आचार्य माधव ने याज्ञवल्क्य के अनुसार दान के पात्र के सम्बन्ध में निश्चय किया है कि दान किसी योग्य (अधिकारी) व्यक्ति को, जो विद्या, धर्म एवं शीलयुक्त हो देना चाहिये। याचना करने पर भी उसकी (परीक्षा करके) योग्यतानुसार और अपनी सामर्थ्यानुसार दान देना ठीक होता है। इसके अतिरिक्त योग्य व्यक्ति को विधिपूर्वक अर्चना करके, अपने सम्पूर्ण फल की इच्छा वाले तथा (योग्य, अयोग्य का ज्ञान रखने वाले) विद्वान ब्राह्मण को अपात्र क्षत्रिय, वैश्य आदि तथा पतित ब्राह्मण को अल्प दान भी नहीं करना चाहिए।

दान के योग्य एवं अयोग्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में सभी स्मृतिग्रन्थों में भिन्न–भिन्न मत मिलते हैं। कहीं राजा को प्राथमिकता, कहीं विद्वान धर्म युक्त विप्र को, यहां तक कि स्मृतिकार मनु ने तो शूद्र को भी योग्य पात्र माना है। अपितु दक्षस्मृति का मत इन सभी मतों से सर्वथा अलग है। स्मृतिकार दक्ष ने कहा है– माता–पिता, गुरु, मित्र, चरित्रवान व्यक्ति, उपकारी, दरिद्र, असहायक विशिष्ट गुण वाले व्यक्ति को दान देने से पुण्य प्राप्त होता है, किन्तु धूर्तों, बन्दियों, मल्लों, कुवैद्यों, जुआरियों, वंचकों, चाटों, चारणों एवं चोरों को दिया गया दान निष्फल होता है।

मनु के अनुसार कपटी एवं वेद न जानने वाले ब्राह्मण को दान का पात्र नहीं माना गया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने पात्र की योग्यता के मापदण्ड को तय किया है कि न केवल श्रुताद्ययन आदि से अथवा न केवल शम–दमादि तपस्या से ही कोई व्यक्ति सुपात्र होता है अपितु जिस व्यक्ति के आचरण में विद्या और तपस्या दोनों का समन्वय हो वही (व्यक्ति) श्रेष्ठ होता है।

देय पदार्थ तीन कोटियों के माने गये–

1. उत्तम देय पदार्थ– गाय, भूमि, सोना, हाथी–घोड़े, रथ आदि।
2. मध्यम देय पदार्थ– विद्या, आश्रय गृह, घरेलू उपकरण, (पलंग बरतन आदि) औषधि मानी गई है।
3. निकृष्ट देय वस्तुयें– जूते, हिंडोले, गड़ियां, छत्र या छाता, बरतन, आसन, दीपक, लकड़ी, फल तथा अन्य जीर्ण–शीर्ण वस्तुयें इत्यादि अधम देय माने गये हैं।

तीन प्रकार के देय द्रव्य सर्वोत्तम देय कहे गये हैं, यथा गाय, भूमि एवं सरस्वती अर्थात् विद्या दान। इन्हें अतिदान भी कहा गया है। बृहस्पति, स्मृति में आया है कि ये तीनों प्रकार के दान दाता को सब पापों से मुक्त करा देते हैं। अर्थात् गाय, भूमि एवं विद्या इत्यादि अतिदान हैं। महर्षि मनु, महर्षि वसिष्ठ एवं महर्षि याज्ञवल्क्य इत्यादि के अनुसार विद्या सर्वश्रेष्ठ देय है। यह जल, भोजन, गाय, भूमि, वस्त्र, तिल, सोने एवं मधु से श्रेष्ठ देय है। अनुशासन पर्व की दृष्टि से भूमि का दान सर्वश्रेष्ठ दान है। कुछ पदार्थों का दान महादान कहा जाता है। अग्नि पुराण के अनुसार दस महादान इस प्रकार हैं– सोना, अश्व, तिल, हाथी, दास–दासियाँ रथ, भूमि, घर, कन्या एवं कपिला गाय का दान।

दान के प्रकार :–

सर्वप्रथम करुणावश जो दान दिया जाता है वह अक्षय फलदायक होता है। अतः यह दान अन्य छः प्रकार के दानों में विशेष माना जाता है।

छः प्रकार के दान निम्नलिखित हैं :–

1. विशेष दान– दया या करुणा करके दिया गया दान।
2. नित्य दान– प्रतिदिन वेश्वदेवादि की पूजा के भोजन स्वरूप दान।
3. नैमित्तिक दान– किसी विशेष निमित्त पूर्वक दिया जाने वाला दान।
4. काम्य दान– किसी प्रकार की कामना से प्रेरित होकर किया गया दान।
5. ध्रुवदान– जिसका फल कभी नष्ट न हो, वह ध्रुव दान है।
6. नैवेशिक दान– निवेश की तरह से स्थिर रहने वाला दान।

महर्षि देवल के अनुसार जो दान दयावश किया जाता है, वह विशेष दान कहलाता है और जो दान प्रतिदिन किया जाये वह नित्य दान है। किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर किया जाने वाला दान नैमित्तिक दान है। जो दान कामना या इच्छा के निमित्त से किया जाये वह काम्य दान कहलाता है। जैसे सन्तानोत्पत्ति, विजय, स्मृद्धि, स्वर्ग या पत्नी आदि। जो दान जन कल्याणार्थ सदा के लिये किया जाता है जैसे–वाटिका, कूप, प्याऊ इत्यादि समर्पण के भाव से किया जाने वाला ध्रुवदान होता है। जो दान अक्षयफल प्रदान करने वाला हो तथा निवेश की भावना ये युक्त होकर किया जाता है ऐसा दान नैवेशिक दान है।

दक्षस्मृति में नैवेशिक दान को अलग ढंग से बताया गया है। विवाह के लिए ब्राह्मण को तथा उसे

पूर्णरूपेण व्यवस्थित करने के लिए जो दान दिया जाता है, वह दान का फल अग्निहोत्र एवं अग्निष्टोम यज्ञ करने से भी नहीं मिलता अर्थात् एक मातृ पितृ विहीन ब्राह्मण के संस्कार एवं विवाह आदि कराने से जो पुण्य मिलता है उसके समान कोई फल नहीं मिलता है।

दान की तिथियां :-

दान करने के उचित कालों के विषय में बहुत से नियम बने हुए हैं। प्रतिदिन के दान के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट अवसरों के दान की व्यवस्था करते हुए धर्मशास्त्रकारों ने माना है कि प्रतिदिन के दान कर्म से विशिष्ट अवसरों के दान–कर्म अधिक सफल एवं पुण्यप्रद माने गये हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि अयनों अर्थात् सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन के प्रथम दिन में सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण षडाऽशीति (छियासीवां दिन का समय या अवधि) सूर्यचन्द्र ग्रहण के समय दान अवश्य देना चाहिये। क्योंकि इन अवसरों पर किये गये दान अक्षय फलों के दाता माने जाते हैं।

काणे महोदय ने विभिन्न धर्मशास्त्रों के अनुसार तिथियों का संकेत दिया है–अमावस्या के दिन, तिथिक्षय में, विश्व में, जब दिन–रात बराबर हों एवं व्यतिपात के दिन का दान, सौ गुणा फल देने वाला होता है। इसी प्रकार उपरोक्त दिनों या तिथियों के अतिरिक्त रविवार का दिन स्नान जप, होम, ब्राह्मण भोजन, उपवास एवं दान के लिए महत्वपूर्ण बतलाया है।

दान के अपवाद :-

सामान्य रूप से दान के नियम विभिन्न स्मृतिकारों ने भिन्न–भिन्न बताये हैं अपितु कुछ स्मृतिकारों ने इनके अपवाद भी बताये हैं जैसे कि– ग्रहण, विवाहों, संक्रान्तियों एवं पुत्ररत्न लाभ इत्यादि के अवसर पर विशेष रूप में रात्रि में दान दिये लिये जा सकते हैं। इसी संदर्भ में महर्षि देवल का विचार है कि नैमित्तिक दान रात्रि में भी सम्पन्न किये जा सकते हैं।

व्यास स्मृति में भी इसी मत का समर्थन मिलता है कि वाराणसी, प्रयाग, पुष्कर, गंगा एवं समुद्र तट, त्रिवेणी, कुरूक्षेत्र, गया, अमरकण्टकादि तीर्थों पर दिया गया दान, अनन्त फलदायक होता है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रज्ञों ने व्यष्टि और समष्टि के कल्याण के लिए आह्निक आचार के अंतर्गत दान को अतीव महत्व दिया है। जैसे भी हो संपत्ति होने पर दान अवश्य देना चाहिए और कलियुग में दान ही मनुष्य की मित्रवत रक्षा करने वाला एक मात्र धर्म है। दान न देने वाला व्यक्ति गधे इत्यादि की योनि में पड़कर अधोगति को प्राप्त करता है। स्मृतिकारों ने किसको दान दिया जाय इसकी पात्रता भी निर्धारित की, साथ ही अनेक प्रकार के दान और उनके द्वारा प्राप्त फल का भी विस्तृत विवेचना की है। स्मृतियों में दान देने की विभिन्न विधियों के साथ दान का समय और स्थल भी निर्धारित किया गया है। स्मृतियों में यद्यपि दान देना और लेना दोनों को ही उत्कृष्ट आचार कहा गया है किन्तु कुछ पदार्थों का एवं कुछ व्यक्तियों से दान लेना भी निषिद्ध था। याज्ञवल्क्य के अनुसार क्षुधा से पीड़ित होने पर भी ब्राह्मण को ठगने वाले दंभी, पाखण्डी, स्वार्थी, शत्रु एवं शास्त्रों की मर्यादा विधि के अतिक्रमण करने वाले राजा से प्रतिग्रह लेना वर्जित था। दान करने की इसी भारतीय परम्परा ने कोरोना संकट के समय लोगों को राहत दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ सूची :-

1. ऋग्वेद, सायण भाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, भाग 1 से 10 पूना, 1936, 10.107.2, 7.

2. ऋग्वेद, पूर्वोद्धृत, 10, 107, 2, 3, 7, 9, 11
3. बौधायन धर्मसूत्र, सं0 उमेश चंद्र पाण्डे, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1972, 4/6/6/4.
4. मनुस्मृति, टीका कुल्लूकभट्ट, सं0, गोपालशास्त्री नेने, चौखम्बा, वाराणसी चतुर्थ संस्करण, विक्रम संवत् 2024.
5. कृत्यकल्पतरू, भोजकृत, सं0 श्री के0वी0 रंगास्वामी आयंगर, ओरियंटल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, 1941.
6. पाण्डेय, राजबलि, हिन्दू धर्मकोश, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1917, पृ0सं0 318.
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा टीका सहित, काशी संस्कृत ग्रंथमाला 178. पंचम संस्करण, विक्रम संवत् 2050, 2/27.
8. मनुस्मृतिः, मेधातिथि रचित ''मनुभाष्य समेता'' कलकत्ता प्रकाशन, 1932–39, 5/4.
9. व्यास स्मृति 4/28, तुलनीय श्रीमद्भगवद्गीता 17/20.
10. मनुस्मृति, पूर्वोद्धृत, 1, 86.
11. पराशरस्मृति, हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1983. 1.23.
तपतः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेव कलो युगे।।
12. महाभारत (शांतिपर्व) सं0, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, गुजरात, 1978, 3.11 द्रविणोपार्जनं भूरि पात्रेषु प्रतिपादनम्।
13. मनुस्मृति की मेधातिथि व्याख्या –पूर्वोद्धृत, पृ0 4/5
14. काणे, पी0वी0 : धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1982.
15. पराशरमाधव–श्रीमन्माधवाचार्यकृत, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1974, पृ0 166.
16. आदित्य–पुराण–पराशर–माधव से उद्धृत, पृ0 164.
17. श्रीमद्भगवतगीता, 26.39
18. याज्ञवल्क्यस्मृति–पूर्वोद्धृत, 1.100
19. मनुस्मृति–पूर्वोद्धृत, 4.33
20. गौतमस्मृति–स्मृति–संदर्भ (भाग–4) नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1978, 17.1, 2
21. मनुस्मृति–पूर्वोद्धृत, 10.102, 103
22. पूर्वोद्धृत, 11.24
न यज्ञार्थ धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेतकर्हिचित्।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते।।
23. याज्ञवल्क्यस्मृति–पूर्वोद्धृत, 1.203, 201
24. दक्षस्मृति–3.15.16
25. मनुस्मृति–पूर्वोद्धृत, 4.193
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यजितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय पात्रदातुरेव च।।

26. याज्ञवल्क्य स्मृति–पूर्वोद्धृत, 1.200, 202
न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृतमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम्।।
27. देवल–पराशर माधव से उद्धृत, पृ0 170.
28. बृहस्पतिस्मृति– सं0, के0वी0, रंगास्वामी आयंकर, बड़ौदा, 1941, 18
त्रीन्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
तारयन्ति हि दातारं सर्वाहपापाद संशयम्।।
29. मनुस्मृति–पूर्वोद्धृत, 4.233 सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
30. महाभारत (अनुशासन पर्व) 61.89.
31. अग्निपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय 209.
32. देवल, पराशर–माधव से उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ0 169.
33. दक्षस्मृति, ईश्वरलाल प्रजापतिकृत, राही प्रकाशन, दिल्ली, 3.30–31.
34. याज्ञवल्क्यस्मृति–पूर्वोद्धृत, 1.203 दातव्यं प्रत्यहं पात्रे 'निमित्तेषु विशेषतः'।
35. काणे, पी0वी0 : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0 453.
36. देवल, पराशर–माधव, पृ0 114.
'राहु–दर्शन–संक्रान्ति–यात्राऽऽदो, प्रसवेषु च।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते।।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 57-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Women of Vijaynagara Empire - a forgotten story

Rajshree Kate1 and Dr.Sanyukta Thorat2
[1] PhD Research Scholar,
Post Graduate Department of Fine Arts, RTM Nagpur University, Nagpur
[2] Research Supervisor,
Head of the Department, Department of Fine Arts, RTM Nagpur University, Nagpur

ABSTRACT

Any history is mostly about the kings, princes and other men and their deeds. We rarely find women mentioned in the narratives. Vijayanagar Empire was one of the most progressive societies in the world. The Vijaynagara empire rules over a large part of South India from 13th century to 15th century. Women's contribution to society was marked as equal to men. Women were sculpted on the temple structures and talked about by the travellers of Vijaynagar. Women were liberal, educated and participated in many streams like fine arts, administrations, battlefields, politics etc.

Keywords : History, Vijaynagara, Women, Society

Women of Vijaynagara Empire - a forgotten story

The Vijaynagara empire rules over a large part of South India from 13th century to 15th century. However, as per 'A Forgotten Empire' by Robert Swell, in 1336 AD, a transition from the old to the new happened. During the reign of Edward-III, of England, there occurred an event in India, that instantly changed the political condition of entire south India. With that date, the volume of the ancient history in that tract closes and the modern begins. The event was the foundation of the city and kingdom of Vijayanagara.

Before 1336 AD, entire south India was dominated by ancient Hindu kingdoms, many kingdoms were so old that their origins has never been traced. Then there came

Mughals to conquer all over India. When Mughals reached Krishna river, the Hindus in south India come together offering some hope of protection. Vijaynagar became the saviour of the south part of India for two and a half centuries. At present,the existence of this kingdom is hardly remembered.

Vijayanagar Empire was one of the most progressive societies in the world. Women's contribution to society was marked as equal to men. We can see the impact, as Hampi, the city of temple structures, gets its name from Parvati, a principal goddess of Hindu mythology. The monolithic structures of this ancient city and the carvings that adorn these stone walls are an immortal reminder of the importance of women in ancient Hampi.

When talking about history, it is mostly the kings, princes and other men and their deeds. We rarely find women mentioned in the narratives. However, women's power was explored to its fullest during thereign of the powerful and popular king Krishnadevaraya of the Vijaynagar dynasty (1509-1529).

Krishnadevaraya, was an efficient administrator and vigorous trader who brought overseas trade into the waters of India. He developed the market of precious stones, precious metals, animal stock and fine clothes. Fine arts and literature reached new heightsat the Vijaynagara empire. Much of the contribution in the literature of Kanada, Telugu, Sanskrit and Tamil was seen, during the period. Famous travellers, such as Nicolo Conti (1420 CE) from Italy and Abdur Razzak (1443 CE), an ambassador from Persia, the Portuguese travellers Duarte Barbosa (1516 CE), Domingo Paes (1520 CE) and FeranoNuniz (1535-1537 CE) described the magnificence of the city and how its women enjoyed ample freedom. Apart from the sculptural depictions, travellers' accounts, literature, scriptures, and sculptures on the walls of temple structures, provide evidence of women's participation in religious, social, political, commercial, and economical activities of the state.

Women in various activities:

MahanavamiDibba is an elevated square platform in stone. Its sides are carved with animals and men. Dancing women and royal attendants are sculpted on the outer

walls of the platform. Women are sculpted here on the walls as music performers, attendants, women horse riders, women taming horses, women as elephant mahouts, practising archery, sword fighting, hunting, wrestling etc (Plate No.1). Also women were accompanied on the battlefield. There were great warrior women in the Vijaynagara empire. (PlateNo2&3) It was said that many times queens of Krishnadevaraya accompanied him to the battlefield.

Women dancers of Vijaynagara

There were two varieties of dances – Marga or classical dance form and Desi or folk dance form (Kumari, 1996, p.67). Sculptural and literary sources of that period document two categories of dancers: trained classical and folk dancers. Except for some instances of individual performances, reliefs on monuments usually depict group dance. Group dances were performed during celebrations of various events and festivals, while individual performances may have been carried out in private for the enjoyment of kings and nobles as well as in temples in front of the gods. According to FeranoNuiz, dancing women were responsible for entertaining the king, but in his absence, every Saturday, they were obliged to go to the palace to dance before the king's idol, which was in the interior of his palace (Nuniz, 1984, p.379). This might have been the kind of tribute paid to the king by dancing girls. (Plate No.4&5)

Women's fashion of Vijaynagara

The women of the elite class wore garments made of silk or cotton and also used bright colours. The garment is usually five yard long piece of cloth with one part grit around the waist and the other part thrown around the shoulders across breasts in such a way that one arm and shoulder remained uncovered. The queens wore separate upper garments. Bronze sculptures of Chinnadevi and Trumaladevi at Tirumala. Elite women also wear embroidered leather shoes. They style their hair with a knot high on the head and many different fashion styles with knots. Women used to wear different styled earrings in right and left earlobes as a fashion statement. Many travellers wrote that the iconographic tradition has brought out this new fashion represented by elite women and considered the ideal dressing. (Plates 6&7). Lifestyle of women in that era was no less than that in the current times rather they were more advance and fashionable. Women also used to enjoy drinking liquor and partying and dressing differently for

such occasions.

Education of women of Vijaynagara

During the Vijayanagar empire's zenith, female artists were encouraged to contribute to the literature. Krishnadevaraya, besides having dominion over peninsular India, patronized female writers and poets.

The elite women were taught to read and write and some of them became efficient and impactful writers. One of the wives of Achyut Raya was, Tirumalamba,who wrote 'VaradambikaParinayam', which describes the marriage of Achyut Raya with Varadamba. Tukkadevi another wife of Krishnadeva Raya wrote, 'TukkaPanchakam', where she described the campaign of Krishnadeva Raya in Cuttack to defeat the king Gajapati and marry his beautiful daughter Tukkamba. Many believe this was Chinnadevi.

Working class women:

Many Europeans and Portuguese came for trading, worked as advisors and soldiers and settled down in India. They married many Indian girls and even converted to Islam and Indianized their wearing clothes and eating Indian food. Even today, each cast has different Tali that signlfied the wearer's identity. One way to identify was with the dress and ritual observed by women.

There was a large number of working women who served elite women. Some of these women were maids, servants, wrestlers, astrologers and sooth Sayers, musician, dancers, cook, guards, washing women, holding various objects in front of the king, fighting onthe battlefield, doorkeepers etc. Barbosa mentions that the king had thousand of women reserved to accompany him during his travels and they had great. Many women worked as farm labourers weavers, potters etc.

Conclusion:

This was a period of cultural creativity marked by surrounded progress in art, literature and the production of ideas and women are noticeable in all these areas. In the Vijaynagara period, we see the crystallization and expression of many ideas about women leading to the emergence of a new personality that can be located in history.

Vijaynagara women left a mark on traditions that are still followed, after centuries, by women of Andhra.

PLATES

Plate No.1 - Women as warriors and taming horses – photograph by Rajshree Kate

Plate No.2 - Women going to the battlefield – photograph Rajshree Kate

Plate No.3 - Carvings on the MahanavamiDibba portraying women engaged in hunting – Photograph: Nicholas Rixon

Plate No.4 - Women Dancers– Photograph: Nicholas Rixon

Plate No.5 - Women dancers-phtograph Rajshree Kate

Plate No.6&7 - Fashion women -photograph Rajshree Kate

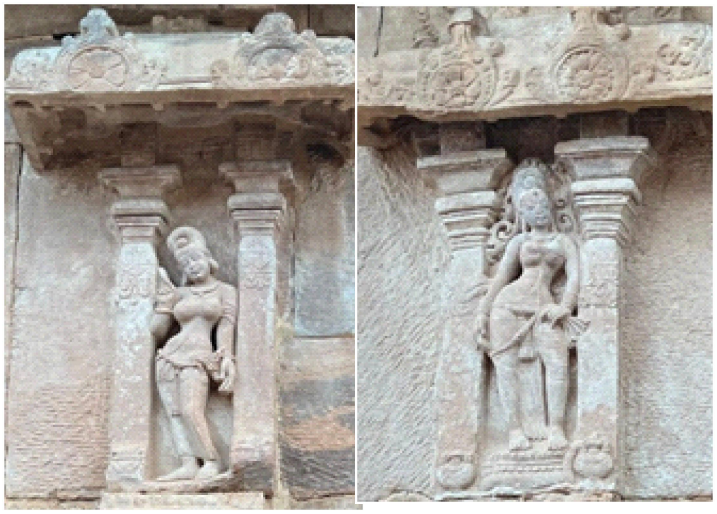

References :-

1. Barbosa, Duarte. 1918. The Book of Duarte Barbosa - An account of the countries bordering on the Indian ocean and their inhabitants. and completed about the year, 1518. A.D. London Hakluyt Society. Vol.Lpp.205-06.
2. Sewell Robert., A Forgotten Empire (Vijaynagar)-a contribution to the history of India, Asian Publications, Madrass 2017.
3. Conti.N (1974), The Travels of Nicolo Conti, in the East, in the Early Part of the Fifteenth Century., In R.HMajor (Ed.), India in the 15th Century being a collection of narratives of voyages to Idia, Deep Publications.
4. Kumari, N. (1995). Social Life as Reflected in Sculptures and Paintings of Later Vijayanagara Period, A.D. 1500-1650: With Special Reference to Andhara. T.R.Pubication.
5. Rekha Pande, Women in Vijaynagara Empire under the Tuluva Dynasty, 15th-16th century, Conference paper-January 2010,
6. Nuniz.F, (1984). Hronicle of FernaoNuniz. In R,Sewell (Ed.), A Forgotten Empire, Asian Educational Services.
7. Dr.Lata Pujari, Women Performing artists at Vijaynagara (1336-1565 CE), Research Horizons:International Peer-Reviewed Journal, Vol.10 Nov.2010.
8. https://www.thehindubusinessline.com/news/variety/Alpha-women-of-Hampi/article20396779.ece
9. https://www.evolveback.com/hampi/women-hampi/

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 64-67

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'साहित्य और संस्कृति : मानविय मूल्य के संदर्भ में'

डॉ. रविंद्रनाथ माधव पाटील, सहयोगी प्राध्यापक
डॉ. खत्री महाविद्यालय तुकूम चंद्रपुर, गोंडवाना विद्यापिठ गडचिरोली

सारांश :-

साहित्य और समाज और संस्कृति में गहरा संबंध है। प्रेमचंदजी के वक्तव्य नुसार 'साहित्य समाज का दर्पण है'। मानव समाज के सूचारू विकास और संवर्धन के लिए साहित्य और संस्कृति दोनों भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। साहित्य, बुद्धि और हृदय से संपन्न है। जो मानव समाज और संस्कृति से अलग न होकर उसका अभिन्न अंग है। साहित्य में चित्रित संपूर्ण विशय मानव समाज, उसकी समस्याएँ, मानव जीवन और मानव मूल्य ही होता है। मानव जीवनानुभव, मनोभावनाएँ, सामाजिक प्रभाव एवं दबाव आदि की उपेक्षा करके साहित्य लेखन हो ही नहीं सकता। मानव की संभ्यता के विकास की भीतरी हिस्से में प्रवाहित होने वाली विचार एवं कार्य की धारा को संस्कृति कहा जाता है। जो अपनी प्राचीनता के साथ ही जीवनादर्शो के लिए भी पहचानी जाती है। जिस देश का साहित्य और संस्कृति अच्छी होगी उस देश का समाज मानविय मूल्यों से भरा, आदर्शस्वरूप होगा। उस देश की जनता का सर्वागिण विकास निरंतर होते रहेगा।

प्रास्ताविक :-

साहित्य मानव ज्ञान की तनमन की लालसा को शांत करता है। विचारों की क्षुधापूर्ति करता है। संस्कृत के विद्वानों ने साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है, कि ''सहितस्य भाव साहित्य'' अर्थात जिसमें साथ रहने का भाव विद्यमान हो उसें साहित्य कहते है। साहित्य के द्वारा ही हम अपने राष्ट्रीय इतिहास, देश गौरव, गरिमा, संस्कृति और सभ्यता, पूर्वजों के अनुभूत विचार, अनुसंधान, प्राचीन रीति–रिवाज, रहन–सहन तथा रूढि परंपराओं, त्योंहारों से परिचय प्राप्त करते है। आज से सैकडों वर्ष पूर्व देश के किस भाग में कौन–सी भाषा बोली जाती थी, उस समय की वेश–भूषा क्या थी, उनके सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक विचार, कार्य व व्यवस्थाएँ कैसी थी आदि बातों की जानकारी और मानविय मूल्य हमको तत्कालीन साहित्य और संस्कृति के अध्ययन से ही पता चलते है। अतः जिस देश और जाति के पास जितना उन्नत और समृद्धशाली साहित्य और संस्कृति होगी वह देश और जाति उतनी ही अधिक उन्नत और समृद्ध समझी जाएगी। जैसे आधुनिक साहित्य में महावीर प्रसाद, द्विवेदी, हजारी प्रसार द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, मैथितिशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, अमृता प्रितम, ममता कालिया आदि के साहित्य को पढ़ने पर हमें उस समय की वास्तविक परिस्थिति का पता चलता है। उदाहरण स्वरूप प्रेमचंदजी के उपन्यासों को पढ़कर हम उस समय की मध्यप्रांत उत्तर प्रदेश की जनता का इतिहास, किसानों की दशा, गांव और शहर, जमींदार, साहुकार तथा भारतीय ग्रामिण और शहरी संस्कृति का समझ सकते है। जो आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं, अनुकरणीय है।

बीज शब्द (KEY WORD) :-

साहित्य, संस्कृति, समाज, मानव मूल्य, भावना, वर्तन, भूत–भविष्य–वर्तमान।

हिन्दी साहित्य :–

हिन्दी साहित्य भारतीय नागरी सभ्यता के महानतम अनुसंधान में से एक है। साहित्य मानव के मनोभावात्मक संसार कापोषण, परितृप्त, प्रकट, एवं सृजित करता है। साथ ही संपूर्ण मानव जीवन के प्रति उसे संवेदनशील एवं जागरूक करता है। साहित्य मानव की व्यक्ति सत्ता को बाहरी सत्ता से जोड़े रखता है। साथ ही मनोभावात्मक स्तर पर सर्वांग रूप से सामजंस्य स्थापित करते हुए उसे सभी प्रकार के सौन्दर्यबोध से भीषण से भीषण परिस्थिति में भी जीवीत रहने की, ठीक से जीने की अदम्य प्रेरण बहाल करता है। साहित्य के कारण ही मानव सजीव–निर्जिव, जड़–चेतन सभी प्राणी मात्र कें सुख–दुःख में स्वयं को देखने का निरंतर प्रयास करते रहता है। जब भारत देश अंग्रेजों की परतन्त्रता में बंदीस्त था। उस समय विदेशियों की दमननीति बहुत बढ़ने लगी थी। ऐसे में पराधिन भारतवासियों में निराशा की लहर थी। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य ने अपनी अहंम भूमिका निभायी।

साहित्य :–

जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सामुदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। जिसे साहित्यकार अपने साहित्य में चित्रित करता है। और जिसे मानव जीवन यापन करते समय अपने जीवन में अपनाता है वह हमारी संस्कृति है। जनता को देश की स्वतंन्त्रता के लिए जागृत करने, त्याग, बलिदान, सर्म्पण करने का बिडा हिन्दी साहित्य ने उठाया। जिनमें अनेक साहित्यकारों ने अपनी अहं भूमिका निभायी। जिसमें उदाहरण रूप में हम माखनलाल चतुर्वेदी की पुष्प की अभिलाषा कविता में नवयुवकों को अपनी मातृभूमि पर शीश चढ़ाने की प्रेरणा फुल के प्रतिक रूप में हमें दी है।

''मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।[1]

अर्थात समाज के विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार और उसके साहित्य पर निश्चित रूप से पड़ता है। चाहें वह किसी भी काल मे क्यों न हो। ''कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अपने 'पाप के चार हथियार' निबंध द्वारा पाप के चार हथियार ''उपेक्षा, निंदा, हत्या और श्रद्धा। बतलाकर समाज में जागृति का झंडा बुलंद किया है।''[2] इस प्रकार अनेक हिन्दी साहित्यारो ने हिन्दी साहित्य के इतिहास द्वारा सभी काल में हमें यह बतलाने का निरंतर प्रयास है, कि साहित्य का मानव जीवन में क्या महत्व व उपयोगिता हैं।

मानव मूल्य :–

हिन्दी साहित्य में ''प्रेमचंद ने 'कफन' कहानी के माध्यम से पाठको ने घीसू और माधव की संवेदन शून्यता का कारण जानने का प्रयास किया होगा, व्यथित हुए होंगे, मानवता के सहज सामान्य गुणों की अवहेलना ने उनके चित्त को प्रंताडित किया होगा, जबकि वे सामने पड़ी मर्मान्तक प्रसव पीड़ा से छटपटाती अपनी मरणासन्न बहु और पत्नी को केवल इसिलिए देखने नही जाते कि उनमें से एक की अनुपस्थिति में दूसरा एकाध भुना आलु ज्यादा खा जाएगा। साथ ही उसके कफन के पैसे से भी सबसे पहले अपनी वर्षो की अतृप्त जिव्हा और वुभुक्षित उदर की ज्वाला तृप्त करते है।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि आदर्श और मानव मूल्य मात्र उन्हीं लोगों के लिए

लागू होते हैं जिनके पेट की भूख की ज्वाला शांत हो चुकी है। नैतिकता का प्रश्न भी तत्कालिक तथा भौतिक समस्याओं की आपूर्ति के बाद ही उठता हे। ऐसी जीवन की क्रुर सच्चाइयां है। जिसका साक्षात्कार भी वही कर सकता हे जो संवेदनशील है, जिसकी रागवृत्तिजागृत हैं। इस प्रकार साहित्य मानव जीवन की निर्ममता के अभावों की देन घीसू और माधव की पीड़ा के साक्षात्कार की संवेदनशीलता प्रकट करता है। पाठको के मन में इनके व्यक्तित्व की माानवीय दुर्बलताओं के प्रति सहिष्णुंता प्रकट करता है जो मनुष्य की दुर्बलताओं को ध्यान में रखकर अपने प्रतिमानों का निर्माण नहीं करती, वह अपने जन्म के साथ ही अपनी चिता की रचना का भी आरम्भ करते हुए दिखाई देती हैं।

संस्कृति :-

भारत देश भौतिक और प्राकृतिक आदि रूप से अनेक प्रकार की विविधताओं से भरा हुआ है जिसे हम पग–पग पर देख सकते है महसूस कर सकते है। इसे जोड़े रखने का इसका विस्तार करने का इसे मानव के सर्वांगिण हित में हमेशा बनाये रखने का काम भारतीय संस्कृति करती हैं। इसका मूल सिद्धांन्त है ''जिओ और जिने दों।'' परोपकार, समता, यश, अहिंसा, सहनशीलता, उदारता आदि मानविय गुणों की देन भी भारतीय संस्कृति की ही देन है भारतीय संस्कृति के अनुसार आनन्द ब्रह्म है और ब्रह्म ही चिर सत्य है इसके अनुसार मनुष्य पितृ ऋण, देव ऋण, व ऋषि ऋण को लेकर संसार में जन्म लेता है तथा वह इन ऋणों को चुकाए बिना जीवन साधना पूर्ण नहीं कर सकता। भारतीय संस्कृति देश–भक्ति, आदर्श, नेतिकता तथा मानवता का पाठ पढ़ाती हैं। 'सादा जीवन, उच्च विचार' का पाठ पढ़ाती हैं। आज स्वार्थ की भावना चरम सीमा पर पहुॅच गई है तथा विश्व में चारों और अशान्ति ही अशान्ति है संसार पतन की कगार पर खड़ा है संसार को इस भयानक स्थिति से उबारने का एकमात्र साधन भारतीय संस्कृति ही है क्यौकि यह विश्व मे शांति, अहिंसा, समन्वय तथा मानवता का संन्देश देती है। ''निष्कर्ष यह कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध। और सभ्यता की अपेक्षा यह टिकाउ भी अधिक है, क्योकि सभ्यता की सामग्रियॉ टूट–फूट कर विनष्ठ हो जा सकती है, लेकिन संस्कृति का विनाश उतनी आसानी से नहीं किया जा सकता।''[3]

मानव मूल्य :-

भारतीय संस्कृति मनुष्य द्वारा बुद्धि एवं स्वभाव का संस्कार ही सिद्ध होती है। जिसका सिधा संबंध मानव मूल्यों से है। संस्कृति के अंतर्गत उसकी समस्त सृजनात्मक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कलात्मक, आर्थिक तथा सामाजिक आदि सभी उपलब्धियों का अन्तर्भाव होता है। क्योंकि कोई भी जाति अपनी संमग्र रूप में इन्हीं का प्रतिफलन होती हैं कोई भी राष्ट्र अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही जीवनदृष्टि अपनाता है। संस्कृति किसी भी जाति की परंपरा एवं उसके जीवनाधार का मूल्यपरक पक्ष हैं कोई समाज उपर से चाहें जितना भी आध्यात्मिक दिखाई पड़ता हो वह मूलतः अपने आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों की ही देन होता हैं। भारत में समय–समय पर अनेक जातियों, धर्मो, दर्शनों, मान्यताओं आदि का प्रवेश हुआ है। जिसके कारण यहां समन्वयवादी जीवन दृष्टि विकसित हुई तथा शासन के लिए शक्ति के अल्पतम उपयोग पर बल दिया गया। भारतीय समाज की व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में व्यक्त हुई तथा कर्तव्य बोध के आधार पर जीवन को भी गृहस्थादि आश्रमों में विभाजित कर दिया गया। यहीं नहीं न्याय के प्रतिमान भी जातियों के आधार

पर स्थापित किए गए। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई सशक्त वर्ग ऐसे मानदंडों को भी आदर्श के नाम पर अपने हितों या धार्मिक नियमों के रूप में स्थापित करता हैं। ऐसी स्थिति में संस्कृति का समय–समय पर पुनःमूल्यांकन आवश्यक हैं। जैसा कि भारतीय पुनर्जागरण काल में हुआ हैं। इससे मानव मूल्यों में निरंतर बढ़ोत्तरी व परिवर्तन हो रहा है। जिसे साहित्य और संस्कृति अपने मूल्यों में सहजता से स्वीकार करती है। जिससे मानव जगत का और प्रकृति का पर्यावरण प्रदुषण रोका जा सकता है।

निष्कर्ष :–

साहित्य और संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं। किसी देश की जाति की, सांस्कृतिक चेतना का स्पष्ट चित्र उस देश अथवा जाति में बोली जाने वाली भाषा के साहित्य में तथा वहा के निवासियों की संस्कृति में परिचालित होते हैं। साहित्य समाज और संस्कृति एक दूसरे में दूध और पानी के समान सम्मिलित है। जो मानव के सर्वांगिण हित के लिए सक्षम है। भारतीय साहित्य और संस्कृति में आत्मा को प्रमुखता प्रदान की गयी हैं इस संस्कृति में देह और मन की शुद्धि परम आवश्यक है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता समन्वय की भावना है जिसे हिन्दी साहित्य में चित्रित भगवान राम, कृष्ण, संतों के निर्गुण निराकार राम, महापुरूषों के निर्मिक और प्रकृति रूपि ईश्वर के रूप में साहित्य और संस्कृति में मानवमूल्य के संदर्भ में लिया गया है जो अनेकता में एकता का संन्देश देती है। इसी संस्कृति की महत्वपूर्ण देन है मानवतावाद का सन्देष इसकी विशेषता है।

संदर्भ :–

1. साहित्य प्रकाश–संपादक मंडल–हिन्दी अभ्यास मंडल गोंडवाना विद्यापीठ, गडचिरोली प्रकाशक–राघव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नागपुर–32 प्रकाशन वर्ष–2012 पृष्ठ 41
2. साहित्य रश्मि–संपादक मंडल–हिन्दी अभ्यास मंडल गोंडवाना विद्यापीठ, गडचिरोली प्रकाशक–राघव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नागपुर–32 प्रकाशन वर्ष–2012 पृष्ठ 14.
3. आभा–संपादक मंडल संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती प्रकाशक–राघव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नागपुर–32 प्रकाशन वर्ष–2012 पृष्ठ 38.

संदर्भ ग्रंथ :–

1) उपन्यास और राजनीति– सुषमा शर्मा, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद–पृ. 8
2) साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना– कृष्ण कुमार बिस्सा, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली.
3) हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन–डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श
4) उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियॉ– डॉ. सुरेश सिन्हा, रामा प्रकाशन, दिल्ली
5) समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जन चेतना–डॉ. अरूणा लोखंडे, विकास प्रकाशन, कानपुर

मो.नं. 9850290531

ravindranathpatil@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 68-71

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शोध–पत्र

"व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा, समाज और संस्कृति की भूमिका"

(भूमण्डलीकरण के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ0 साधना अग्रवाल, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी–विभाग)
डी.बी.एस. पी0जी0 कॉलेज, गोविन्द नगर, कानपुर नगर

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य ग्लोबलाइजेशन के प्रभाव से समस्त विश्व एक परिवार की तरह होता जा रहा है। मल्टीमीडिया तथा इंटरनेट के आगमन से जिस त्वरित गति से परिवर्तन हुये हैं उसको देखते हुये मनुष्य को वर्तमान के साथ तालमेल दिखाने में अत्यन्त कठिनाई हो रही है। अतः बढ़ते बाजारवाद के साथ चलने के लिए उसे शिक्षित प्रशिक्षित होना, सामाजिक होना तथा अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संजोकर रखना परमावश्यक हो गया है।

आज पर्सनालिटीकल्ट की अनिवार्यता–वैश्विक समझ और आधुनिक जीवन–पद्धति को अपनाने के लिए आवश्यक हो गयी है। ऐसी स्थिति में शिक्षा के स्तर पर आमूलचूल परिवर्तन कर अपने संस्कारों को सुरक्षित रखते हुए भूमण्डलीकरण की वर्तमान अवस्था के अनुकूल व्यक्तित्व का निर्माण करना एक चुनौती बन गया है। व्यक्ति का विकास, समाज का उत्थान, राष्ट्र और विश्व –बन्धुत्व की प्रेरणा हमारी भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं जिसमें व्यक्तित्व की निरन्तरता की धारा अनवरत प्रवाहित होती रहती है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि–

सिमटि–समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सवगुन सज्जन यह पॅह आवा।

वास्तव में यह कथन एक व्यक्तित्व निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में पूर्णतयाः चरितार्थ होता है। सामयिक स्थितियॉ–चाहे वह सामाजिक हों, साहित्यिक हों, सांस्कृतिक हों अपना प्रभाव डालकर सतत् परिवर्तन की दिशा की ओर उन्मुख करती ही हैं जिससे कोई भी व्यक्तित्व अपने को अछूता नही रख सकता।

सन् 1985 में रूस के तत्कालीन राष्ट्रपति गोर्वाचोब ने कहा था कि– "विश्व के सभी समाज आर्थिक प्रतिक्रियाओं के आदान–प्रदान एवं त्वरित सूचना तंत्र की प्रक्रियाओं के कारण सब इतनी निकटता से जुड़ गये है कि संसार की अब न केवल दूरी कम हो गयी है बल्कि एक दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता भी बढ़ गयी है। आज भूमण्डलीकरण के दौर में सम्पन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने सारे विश्व में अपने पैर मजबूती से जमा लिये

है। आज इसकी वैचारिक सोच वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष नही है। भूमण्डलीकरण के नारे में अब हमारे जन–जीवन के आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक सभी पहलुओं को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया है जिसे वास्तव में हमारे विकासशील एवं अविकसित देशों को गम्भीरता से लेने की आवश्यकता है क्योंकि विश्वायन की परिकल्पना जब पश्चिम की तरफ से आयी तो वहां अपने हित की बात रही, न कि विश्वकल्याण की भावना। जबकि ''आधुनिक भूमण्डलीकरण की अवधारणा कोई नवीन विचार सारणी अथवा परस्पर आबद्ध जीवन–पद्धति अथवा प्रक्रिया नही है, क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि आत्मानुभूत सतत चिन्तन ही विद्यमान है।''[1] ''यह मेरा है, यह पराया है''– इस प्रकार की गणना में करना क्षुद्र मनोवृति का परिचायक है। परन्तु उदार चरित्र वाले लोगों के लिए तो यह समस्त भूमण्डल ही कुटुम्ब है। हितोपदेश में लिखा हुआ है–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेत साम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

आज हमारे भारतीय चिन्तन की ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' तथा 'यत्र' विश्वं भवत्येक नीड़म्' की विश्वव्यापी अवधारणा भूमण्डलीकरण के रूप में परिणत होती जा रही है और अब जब इसकी अपरिहार्यता यथार्थ है विकल्पात्मक नही, तब भूमण्डलीकरण की वर्तमान स्थति में हमारे जीवन में शिक्षा की अनिवार्यता, समाज की गतिशीलता और निरतन्तरता, संस्कृति की अक्षुण्णता तथा व्यक्तित्व की वरीयता को अपनाना और उसे उत्कृष्टता के उस चरम सोपान पर ले जाना ही होगा जहां पर उसे अक्षय ज्ञान शक्ति संचयन कराने की आवश्यकता है। समाज में प्रचलित मान्यतायें व धारणायें हमारे व्यक्तित्व को विशेषरूप से प्रभावित करती है। व्यवहार, विचार, सिद्धान्त, नैतिकता और धर्म व्यक्तित्व के निर्माण के प्रमुख कारक तत्व हैं। व्यक्तित्व निर्माण की ये सारी विशेषतायें हमारे समाज की सांस्कृतिक उपज है। इसलिए व्यक्ति एक सांस्कृतिक प्राणी भी है। यह संस्कृति ही हमे अन्य जीवों से अलग बनाकर श्रेष्ठता प्रदान करती है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति आत्म विकास के लिए समाज पर निर्भर है। व्यक्ति ही समाज का संचालन करता है इसे दिशा प्रदान करता है, वांछित गति देता है और एक ऐसा माहौल तैयार करता है जिसमें व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया सजग होती है। व्यक्तित्व का निर्माण एवं सम्यक विकास एक ज्ञानमय समाज की संरचना करता है एवं निरन्तर अग्रसर होने की प्रेरणा को बलवती बनाता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। अतः सामाजिक गतिविधियॉ साहित्य को प्रभावित किये बिना नही रह सकती। साहित्य मानव–हृदय का स्पन्दन होता है। जीवन की गतिशीलता का अनुशासन होता है। यह न केवल वर्तमान होता है बल्कि भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों का अटूट एक श्रंखलित रूप होता है। जिससे शक्ति संचयन कर व्यक्तित्व का निर्माण और उसमें निखार उत्पन्न होता है। व्यक्ति भावी युग के निर्माण की लालसा लेकर अपने कदमों को नई दिशा देता है।

मानव का व्यक्तित्व बाह्य और आन्तरिक दो पक्षों विनिर्मित होकर सम्पूर्णता को प्राप्त करता है। व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष से तात्पर्य– शारीरिक सौष्ठव, रहन–सहन, भाषा–भंगिमा, कलात्मक प्रवृत्तियों से तथा आन्तरिक पक्ष से तात्पर्य– सांस्कृतिक संचेतना, विचार पद्धति, संस्कार और भावात्मक प्रवृत्तियों से होता है। व्यक्ति की इन्हीं प्रवृत्तियों के चरम उत्कर्ष से समाज के चरमोत्कर्ष को जाना और समझा जाता है। एक सभ्य, सुसंस्कृत, सुसंगठित, सुशिक्षित समाज की परिकल्पना व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा एवं पराकाष्ठा में निहित होती है और एक समग्र, सशक्त, समर्थ समाज ही एक सम्पन्न राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास

दोनों में शिक्षा, समाज और संस्कृति का महत्व और उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है। वास्तव में हमारी शिक्षा की बुनियाद इतनी गतिमयता पूर्ण व इतनी संस्कारमयी होनी चाहिए तथा इसके ढॉचे को इतना परिष्कृत एवं परिपक्व होना चाहिए जो एक ऐसा विवेक उत्पन्न कर सके कि भूमण्डलीकरण से आयातित हम सभ्यता और संस्कृति के सद्पक्ष को ग्रहण कर सकें और असद्पक्ष को परित्यक्त कर सके क्योंकि संसार में समस्त वस्तुयें गृहणीय नही हुआ करती है, व्यक्ति उनके परिणामों के आधार पर वस्तु को चयनित, परित्यक्त और उपेक्षित करता है। **गोस्वामी तुलसीदास ने कहा भी है :-**

त्यागन, गहन, उपेक्षणीय।
अहि, हाटक, तृण की नांई।।

शिक्षा का महत्व और उसकी व्यापकता केवल व्यक्तित्व निर्माण के लिये ही नही बल्कि अपसंस्कृति के प्रसार को रोकने तथा सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखने की दृष्टि से भी कम नही है। संस्कृति रहित शिक्षा आत्माविहीन शरीर के तुल्य है। संस्कृति वह आत्मतत्व है जो व्यक्ति मे जन्म लेकर समाज में पलता है तथा संस्कारों से विकास पाता है। संस्कृति का विशेष सम्बन्ध आत्मपक्ष से है। यह संस्कृति व्यक्ति और समाज को परिष्कृत करती है, परिमार्जित करती है, व्यवस्थित करती है और संस्कारित भी करती है। अनेक विद्धानों ने संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है। बाबू गुलाब राय संस्कृति की व्यापकता को मानते हुए उसके अन्तर्गत ''साहित्य संगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोकवार्ता, राजनीति का समावेश करते है'' ।[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– ''संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।''[3] संस्कृति के सम्बन्ध में मैकाइबर तथा पेज का मन्तव्य भी विचारणीय है। वे कहते है– ''समाज के सदस्य के रूप में हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आनन्द में पाये जाने वाले रहन–सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है संस्कृति।''[4]

शिक्षा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। ''हमारी भारतीय संस्कृति में सत्य–निष्ठा, सदाचरण, त्याग, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता जैसे सनातन मूल्यों का सन्देश निरन्तर मिलता है। निश्छल प्रेम और सदाचरण लोक–संस्कृति के ऐसे जीवन्त और स्थायी मूल्य हैं जिनकी उपेक्षा विश्व का कोई भी मानव–समुदाय नही कर सकता।''[6] वास्तव में संस्कृति की प्रवाहमहता, निरन्तरता एवं शाश्वत अक्षुण्णता शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। हमारी आदि संस्कृतियां अतीत के गर्त में विलीन हो जाती यदि शिक्षा के अनवरत् प्रयास न होते। शिक्षा ही मानव की आभ्यान्तर भावनाओं तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियों को सहज रूप से प्रशिक्षित करके व्यक्ति में सामर्थ्य उत्पन्न कर उसके जीवन को उपयोगी एवं उद्देश्यपूर्ण बनाती है। अतः कहना न होगा कि शिक्षा के सार्थक प्रचार–प्रसार की आवश्यकता भूमण्डलीकरण के नकारात्मक बिन्दुओं से छुटकारा पाने हेतु, भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभाव एवं दुष्परिणामों से बचने हेतु तथा भूमण्डलीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया की सबलता के असद् प्रवाह को रोकने हेतु अनिवार्य है।

सारांशतः भूमण्डलीकरण ने भारतीय संस्कृति, शिक्षा एवं समाज के सम्मुख एक बहुत बड़ी चुनौती उपस्थित की है। मानव–जीवन में व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली अनेक इकाईयॉ होती है जिसमें युगीन परिस्थितियॉ, शिक्षा, सामाजिक वातावरण, संस्कार, प्रेरणा, सम्पर्क और विचारधारा की ओर व्यक्ति अग्रसर होता है और धीरे–धीरे बहते हुए इसी धारा में समर्पित हो जाता है। मानव का व्यक्तित्व उसकी स्वस्थ्य शारीरिक

शक्तिमयता के साथ ही उसके शिक्षित, संस्कारित, आन्तरिक भावापन्न स्थितियों की समग्रता से होता है। यह व्यक्तित्व निर्माण जहां अनवरत् शिक्षा द्वारा होता है वहीं सामाजिक परिवेशगत संस्कार भी उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहयोगी होते हैं।

आज ऐसी स्थिति में जबकि भूमण्डलीकरण किंवा बाजारवाद के आर्थिक संजाल से समग्र समाज प्रदूषित अर्न्तमुख तथा स्वार्थ प्रेरित हो रहा हो, केवल शिक्षा के माध्यम से ही इक्कीसवीं सदी के मानव को ऐसे संस्कार दिये जा सकते है जिससे वह विश्व बाजारवाद की कुप्रवृत्तियों से बचकर उसके सद्अंशों को ग्रहण कर सके। आज भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के दौर में चिन्ता का एक विषय यह भी है इस तेज गति वाले समय में साहित्य अनदेखा न रह जायें ''साहित्य को प्रेमचन्द ने समाज का आइना नही, उसके आगे जलने वाली मशाल माना है और यह मशाल आँधी–तुफानों का सामना करती हुई जलती रहनी चाहिए। आज का समय हो या कल का रचनाकार को तो चुनौतियों का सामना करना लाजमी होता है।''[6] साहित्यकार की रचनाएँ प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों के विघटन में उच्च सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ने में समर्थ होती है, इसमें सन्देह नहीं। अतः निश्चित ही साहित्य और संस्कृति की मूल्यवत्ता समाज में बढ़ते अमानवीयकरण और पूँजीवाद को चुनौती देगी। अतः अन्त में मैं सार रूप में यहां यह भी कहना चाहूँगी कि यदि वर्तमान युवा वर्ग के व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा को परिवर्तित करते हुए, एक सभ्य समाज को निर्मित करके यदि उसे भारतीय मूल्यों से सुसज्जित न किया गया तो भारतीय युवा न तो पूर्ण रूपेण भारतीय ही रह पायेगा और न विदेशी तथा भारत की संस्कृति पुरातात्विक वस्तु बनकर रह जायेगी। ''सर्वें भवन्तु सुखिनः'' की भावना से भावित भारत की इस संस्कृति की व्याख्या, मनोवैज्ञानिकता एवं व्यावहारिकता पर मुग्ध होकर पाश्चात्य चिंतक मैक्समूलर ने कहा है– ''यदि मुझसे पूछा जाये कि किस आकाश के नीचे मानव–मन के सर्वोत्तम पक्ष का पूर्ण विकास हुआ, कहॉ के लोगों ने जीवन की गम्भीरतम् समस्याओं पर गहनतम् विचार किया है, तो मै भारत की ओर संकेत करूँगा।''[7]

निष्कर्षतः आज के भूमण्डलीकरण के दौर में जब हम किसी समुदाय की संस्कृति की बात करते हैं तब हमें उसकी ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक, पृष्ठभूमि और परिवेश को अवश्य ध्यान में रखना होगा, तभी उस संस्कृति का सही और समग्र मूल्यांकन सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 58वाँ अधिवेशन एवं परिसंवाद– गुवाहाटी – पेज नं0– 154 – 155
2. वहीं – बाबू गुलाब राय
3. अशोक के फूल– हजारी प्रासद द्विवेदी – पृष्ठ– 64
4. Maciver and Page - Society - Page 449
5. इन्द्रप्रस्थ भारती– हिन्दी अकादमी, दिल्ली की त्रैमासिक साहित्यिक पात्रिका – पेज नं0–79
6. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 58वाँ अधिवेशन एवं परिसंवाद– गुवाहाटी – पेज नं0– 231
7. वहीं – पृष्ठ संख्या– 182

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 72-78

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामचरित मानस का सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य

डॉ. शिवदयाल पटेल, सहायक प्राध्यापक हिंदी
शासकीय मुकुटधर पांडेय महाविद्यालय कटघोरा, जिला–कोरबा, छत्तीसगढ़

सामाजिक मूल्यवे मानक है जिनके द्वारा हम किसी वस्तु, व्यवहार, लक्ष्य, साधन, गुण आदि को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित, वांछित या अवांछित ठहराते हैं। इन्हें हम उच्च स्तरीय मान दंड कह सकते हैं। सामाजिक मूल्यवे आदर्श है जो सामाजिक जीवन में आचरण में अभिव्यक्त होते हैं। रामचरित मानस का सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य गोस्वामी तुलसी दास ने रामचरित मानस में यह स्पष्ट कर दिया है। मानस के रचनाकाल में जो सामाजिक विकृतियाँ मौजूद थीं उन्हें दूर करने और समाज को पुनः सुसंस्कारित करने के लिये गोस्वामी तुलसी दास पूर्ण रूपेण संकल्पित और प्रतिबद्ध रहे हैं। मध्यकालीन सामाजिक स्थितियों और परिस्थितियों को सुसंस्कारित करने की दिशा में तुलसी दास का रामचरित मानस एक उत्तम और सफल प्रयास है। विश्व चेतना को संस्कारित करने के लिए प्रायः भारतीय संस्कृति उत्तम एवं शुभ लक्षणों से भरपूर भारतीय मनीसा की पहचान है। यही कारण है कि एक पापी, हिसंक या दुष्प्रवृत्तियों से भरा हुआ व्यक्ति भी यदि मरता है तो उसके लिए गोलोकवासी अथवा स्वर्गवासी शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी संदर्भ में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति यहाँ की सांस्कृतिक महत्ता का प्रतिफल है। भारतीय संस्कृति इतनी महान है कि प्रकारान्तर से यह पत्थर को भी तराश कर ईश्वर के स्वरूप में परिवर्तित कर देती है। भारतीय संस्कृति का प्रभाव यह है कि आज भी भारतीय जनता अपने बच्चे का नाम करण रावण, दुर्योधन, मंथरा या शूर्पणखा के नाम पर नही करना चाहती। मगर राम, लक्ष्मण या सीता के नाम पर नाम करण तो किया ही जाता है प्रायः सद्गुणीवान रहनुमान के नाम पर भी बच्चों का नामकरण–संस्कार किया जाता है। कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने इसी मूल्य को समाज में स्थापित करने की कोशिश रामचरितमानस के माध्यम से किया है। शायद यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामकथा को सहज सरल लोक भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय सोच और दृष्टि को पुनः स्थापित करने के लिये ही मानस में पुत्रेष्टि यज्ञ से लेकर अन्तिम संस्कार तक का प्रावधान विधि–विधान पूर्वक करने से सम्बन्धित सभी बातों को मानस में स्थान दिया गया है।

श्रीनिवास पाण्डेय जी का कथन है– ''यह भी समाज का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि प्रायः असत्य और अन्याय का पक्ष प्रबल ही दिखलाई पड़ता है। मगर वास्तव में विजय मात्र सत्य और न्याय की ही हुआ करती है। वैसे यही भारतीय संस्कृति का मूल संदेश भी है। ''सत्यमेव जयते नानृतं।''[1]

गोस्वामी तुलसीदास के 'श्रीरामचरित मानस' में लंकेश रावण को असत्य, अन्याय, अत्याचार, हिंसा एवं अन्याय का प्रतीक पुरुष माना गया है। रावण के भय से भयभीत देवता प्रायः कन्दराओं और गुफाओं में छिप जाया करते हैं। क्रोध में भरकर जिस समय वह धरती पर पांव रखता है उस समय धरती मारे भय के कांपने लगती

है। इस संदर्भ में तुलसी का कहना है – जैसे कोई मतवाला हाथी छोटी सी नौका पर सवार हो चुका हो। इसी प्रकार रावण के सम्पूर्ण सृष्टि में कोई स्वतंत्र नहीं हैं। इसका कारण यह है कि सभी को रावण ने प्रायः अपने आधीन कर रखा था। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि ऐसे तानाशाह, अन्यायी, अत्याचारी एवं असत्य के प्रतीक पुरुष रावण का संहार प्रकारान्तर से सत्य एवं न्याय के प्रतीक पुरूष श्री राम द्वारा सत्य की रक्षा के लिए किया जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा है कि श्रीराममानसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करते रहते हैं। जिससे सर्व साधारण को न्याय की प्राप्ति हो सके। इसीलिए श्रीराम सर्वदा स्वतः न्याय पूर्ण कर्म का निर्वाह करते रहते हैं। जिससे सत्य का पालन प्रायः सुनिश्चित हो सके। मगर लगातार इसके विपरीत रावण समय–समय पर भिन्न–भिन्न प्रकार से असत्य और अन्याय पूर्ण आचरण करता है। वैसे गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में दस सिर के साथ प्रस्तुत करने को प्रतीक रूप में उसे दसों दिशाओं में अन्याय एवं असत्य का संवाहक सिद्ध करने का प्रयास किया है। प्रकारान्तर से गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में रावण को परम अत्याचारी ओर अविवेकी के रूप में दस मुंहा करने का प्रयास किया है। इस क्रम में तुलसी दास यह सिद्ध करना चाहते हैं कि रावण प्रायः जन – सामान्य के बीच दस तरह का आचरण करके लोगों को भ्रमित करने और धोखा देने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में श्रीनिवास पाण्डेय जी ने कहा ''यह दूसरी बात है कि आज के युग में प्रायः दस मुंहाहीन ही सहस्त्र मुंह व्यक्ति भी मिल जायेंगे। जिनके कपट पूर्ण आचरणों को व्याख्यायित कर पाना बेहद कठिन कार्य है।''[2]

प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि आज के समाज में प्रायः न्याय द्वारा सत्य एवं सत्य द्वारा न्याय का ध्यान रखने वाला एवं विभिन्न परिस्थितयों में सिर्फ एक ही तरह का जीवन और चरित्र लेकर बढ़ने वाला व्यक्ति स्वतः सम्मान प्रतिष्ठा, गरिमा विवेक एवं न्यायपूर्ण सत्य का स्वामी बन जाता है। शायद यही कारण है कि मानस में तुलसीदास ने ''सत्य मूल सब सुकृतसुहाए'' कह कर सभी अच्छे कार्यों के आधार रूप में सत्य को स्थापित करने का सुन्दर प्रयास किया है। बहरहाल निश्चित रूप से गोस्वामी तुलसीदास ने प्रायः अपनी समझ और ज्ञान के अनुसार सुनिश्चित ढंग से सत्य की स्थापना करने का प्रयास किया है। प्रायः उनकी सोच है कि सत्यव्रती व्यक्ति ही प्रकारान्तर से सत्य एवं न्याय की रक्षा कर सकता है। इसी क्रम में उन्होंने लोकोक्ति को संस्कारित करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि इस समाज में एक न्यायी ही सत्य का हर संभव आचरण कर सकता है। गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि मे प्रायः भारतीय संस्कृति का दूसरा महत्वपूर्ण संदेश क्रमशः दया और करूणा की भावना है। जिसके द्वारा लोक–हित या जनहित का कार्य किया जाता है। इसी भावना से भरकर समाज में किसी व्यक्ति द्वारा परोपकार संभव है। वैसे आज तक मौजूद सभी प्राचीन धर्मों में प्रायः इस भावना का समावेश किया गया है। गोस्वामी तुलसी दास ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा है कि किसी दीन या दुःखी व्यक्ति को देखकर जब किसी के अंदर दया अथवा करुणा का भाव ही जागृत नहीं होगा – पुनः किसी व्यक्ति द्वारा समाज के अन्दर परोपकार कैसे संभव हो सकता है। वैसे भी बिना परोपकार के समाज के समस्त प्राणियों में सद्भाव या सदाचार की स्थिति कैसे पैदा हो सकती है। बहरहाल दया, करुणा, परोपकार आदि ही समाज – निर्माण की प्रेरक शक्ति है। डॉ० चरणदास शर्मा के अनुसार ''वैसे इसी प्रेरणा के कारण प्रायः राम पीड़ित निरपराध, निर्दोष, ऋषियो, मुनियों एवं जंगल वासी सामान्य जनों की पीड़ा देखकर प्रायः करुणा के वशीभूत हो राक्षसों का वध सुनिश्चित

करते हैं, प्रकारान्तर से राक्षसों द्वारा मारे गये मनुष्यों के कंकाल और हड्डियों को देखकर वह द्रवित हो जाते हैं। इसी क्रम में उन्होंने सारे संसार को अत्याचार और हिंसा में लिप्त रहने वाले राक्षसों से मुक्त करने की कठोर प्रतिज्ञा धारण किया।''[3]

इसी क्रम में तुलसी दास ने कहा है :-

''निसिचरहीन करउ महिभुज उठाइपनकीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुखदीन्ह।।''[4]।।

गोस्वामी तुलसीदास ने परोकार को प्रायः सर्व श्रेष्ठ धर्म और पर पीड़ा को सबसे बड़े पाप के रूप में मान्यता प्रदान की है। तुलसीदास का कथन द्रष्टव्य है–

''परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।''

परोपकार की इस भावना से ओत–प्रोत विशिष्ट जनों को ही तुलसीदास ने संत अथवा साधु पुरुष की संज्ञा प्रदान की है। इसीलिए रामचरितमानस में प्रायः ऐसे लोगों की बारंबार प्रशंसा की गयी है। इसी क्रम में पुनः ''तुलसीदास ने कहा है कि ऐसे व्यक्ति जो स्वयं तो संयम नियम और त्याग का अपने जीवन –क्रम में निर्वाह करते हैं और इसके साथ–साथ हर संभव दूसरों की सेवा उपकार या परोपकार भी करते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों का प्रायः संग साथ ही शुभ माना गया है। इस प्रकार ये क्रियाएं गोस्वामी जी के शब्दों में प्रायः स्वर्ग के सुख से भी बढ़ कर है।

प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि इस प्रेम का व्यापक रूप ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड के एकीकरण और समानता का कारण है। वैसे भी प्रेम अपने समग्ररूप में प्रायः सम्पूर्ण समाज में समानता का बोध पैदा करता रहा है। वैसे अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार मनुष्य सृष्टि के इस शाश्वत सत्य को प्रायः नामांकित या रेखांकित करने का प्रयास करता रहता है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि प्रेम का व्यापक स्वरूप सृष्टि के कण–कण में व्याप्त हैं वैसे यह एक सच्चाई है कि भौतिक नेत्रों से मनुष्य स्वार्थ जनित प्रेम को ही देख पाता है। वैसे गोस्वामी तुलसी दास ने ''मानस'' में व्यापक प्रेम का वर्णन किया है। इस क्रम में रामचरितमानस में ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति से लेकर दास–दासियों के प्रति स्नेह और प्रेम तक का निरूपण किया गया है। इस प्रकार रामचरितमानस में यज्ञ पूजा से लेकर प्रकृति प्रेम तक की व्याख्या की गयी है। गोस्वामी तुलसीदास ने सम्पूर्ण चराचर विश्व में प्रेम की ज्योति विकीर्णित करने के लिये समाज की प्रथम इकाई परिवार से ही प्रेम का प्रारम्भ किया हैं। वैसे माता–पिता का अपने बालकों के प्रति अगाध प्रेम आज अवश्य परिलक्षित होता हैं मगर माता–पिता और गुरु के प्रति प्रेम का जो भाव होता है उसको प्रायः श्रद्धा कहते हैं जिसका आज समाज में नितान्त अभाव है। वैसे यह एक सच्चाई है कि तुलसी के राम माता–पिता और गुरू के प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि पिता की इच्छा मात्र समझ कर वह अयोध्या की राजगद्दी सहर्ष छोड़कर तुरन्त वन के लिये प्रस्थान कर देते हैं। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि श्रीराम विश्वामित्र की आज्ञा से भयंकर राक्षसी ताड़का का भी वध करते हैं। इसी प्रकार गुरू की आज्ञा से ही वह शिव का विशाल धनुष भी तोड़ते हैं और सीता से विवाह करते हैं। यही कारण है ''कि तुलसीदास जी ने प्रायः ऐसे पुत्र या शिष्य का जन्म धन्य माना है जिनके कार्यों को देखकर या सुनकर माता, पिता एवं गुरू प्रायः प्रसन्न होते हैं।''

उदाहरणार्थ :–

''धन्य जनम जगतीत लता सू।
पितहि प्रमोद चरित सुनिजा सू।। ''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रायः मानस का प्रेम समानता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसी क्रम में यह भी कहा जा सकता है कि मधुर वालों में आत्मीयता का जो भाव होता है। प्रायः उसको मैत्री कहते हैं। इसी प्रकार प्रायः श्रीराम ने सुग्रीव, विभीषण और निषादराज को अपना मित्र बनाया। इसी क्रम में उन्होंने सदैव उन्हें बराबरी का दर्जा दिया है। वैसे भी श्रीराम ने उनके प्रति भाई से भी गहरा लगाव बनाये रखने का प्रयास किया है। इसी क्रम में तुलसी दास ने कहा है–

''जेन मित्र दुःख होहिं दुखारी।
तिन्हहिं विलोकत पावक भारी।।
निज दुःख गिरिस मरज करि जाना।
मित्र के दुःख रज मेरू समाना।।
जिन्हके असि मति सहजैं आई।
तेसठकत हठि करत मिताई।।'' [5]

प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि आज के स्वार्थमय वातावरण में मित्रता का यह सम्पूर्ण मानव समाज के लिए मान दण्ड अत्यन्त उपयोगी हैं। यही कारण है कि श्रीराम ने अपनी पत्नी सीता की खोज का कार्य स्थगित कर अपने मित्र के रूप में सुग्रीव को पीड़ित करने वाले शत्रु बाली का वध करना अपना प्रथम कर्तव्य माना है। मात्र यही नहीं बल्कि युद्ध क्षेत्र में भी मैत्री के प्रखर स्वरूप को स्थापित करने के क्रम में उन्होंने रावण के प्राणघातक शक्ति सम्पन्न वाणों का प्रहार स्वयं झेलने का प्रयास किया है। इसी क्रम में उन्होंने विभीषण की रक्षा करने का सफल प्रयास किया है।

इसी संदर्भ में तुलसीदास कहते हैं :–

आवत देखि शक्ति अति घोरा।
प्रनतारति भंजन पन मोरा।।
तुरत विभीषन पाछें मेला।
सन्मुख राम सहे उसोइ सेला।।'' [6]

बहरहाल सेवक और सेवक के बीच भक्त और भगवान की सीमांशा के क्रम में एक चमत्कारिक आदर्श का निरूपण भी प्रेम–निरूपण का ही एक पक्ष है। वैसे इस प्रेम का जैसा सामंजस्य ''रामचरित मानस में प्राप्त होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्व – साहित्य में भी दुर्लभ है। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि श्रीराम और हनुमान के बीच जैसी पारस्परिक आत्मीयता एवं प्रेम है प्रायः वह अद्वितीय है। यही कारण है कि सेवक हनुमान अपने स्वामी श्रीराम की इच्छा को ही उनकी आज्ञा मानकर प्रायः उसकी पूर्ति में मनसाबाचा कर्मणा समर्पित हो जाते हैं। इस क्रम में वह भयंकर से भयंकर बाधाओं को पार करते हुए प्रायः उनकी इच्छा की सम्यक पूर्ति करते हैं। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि इस कार्य के क्रम में चाहे सीता की खोज हो या संजीवनी बूटी लाना हो' प्रायः वह बिना किसी पद, प्रतिष्ठा, पुरस्कार की लालसा के अपने स्वामी की इच्छा को ही अपने जीवन का परम

कर्तव्य मानकर लक्ष्य प्राप्ति के क्रम में आगे बढ़ जाते हैं। फिलहाल ऐसा संदर्भ ही किसी भी सेवक का चरम हुआ करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसीलिये कहा है कि श्रीराम ने भी अपने सेवक को सरणा के धरातल पर प्रतिष्ठित कर भरपूर सम्मान देने का प्रयास किया है। इसी क्रम में श्री राम ने बार–बार सेवक के उपकार का आदर्श स्मरण कर ऋण से मुक्त होने में अपनी असमर्थता व्यक्त किया है। वैसे इसी संदर्भ में तुलसीदास ने कहा है–

''सुनु कपि तोहिं समान उपकारी।
नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होई न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहिं उरिन मैं नहीं।
देखेउं करि बिचार मन माहीं।।'' [7]

प्रकारान्तर से मानस के श्रीराम का यही दण्ड विधान था गोस्वामी तुलसीदास का भी यही आशय है कि पाप कर्म से घृणा करो– मगर पापी से नहीं, जिससे उसके अंदर सुधार की सम्भावना बनी रहे। वैसे श्रीराम ने किसी जाति विशेष से कभी घृणा नहीं किया। इस क्रम में उन्होंने अत्याचारी एवं परपीड़क आसुरी संस्कृतियों से घृणा अवश्य किया है। फिलहाल जिनमें न्याय सत्य, दया, धर्म, पर हित एवं मित्रता का भाव है– प्रायः श्रीराम ने उन राक्षसों और बानरों का भी सम्मान करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उन्होंने प्रायः राक्षस कुल के विभीषण, वानर जाति के सुग्रीव, अंगद, हनुमान, रीक्ष जाति के (भालू) जामवंत, यहाँ तक कि निकृष्ट पक्षी जटायु का भी आदर और सम्मान किया है। यहाँ तक कि उन्होंने वालि और रावण की मृत्यु के पश्चात सम्पूर्ण वैर भाव विस्मृत कर सुग्रीव एवं विभीषण को उनकी ससम्मान अंत्येष्टि संस्कार करने की आज्ञा प्रदान किया है । गोस्वामी तुलसी दास ने राम चरितमानस में इसका स्पष्ट विवेचन किया है कि श्रीराम ने राज्य त्याग और बनवास के मूल कारण के रूप में अपने समक्ष उपस्थित विमाता कैकेयी के प्रति कभी भी असम्मान का भाव प्र कट नहीं किया बल्कि अपनी वाणी से उनके मन की कलुशता को ही बराबर दूर करने की हर संफल कोशि ाश किया है। इस क्रम मे ंश्रीराम की बनवास काल समाप्ति को बाद सारी कलुशता अपने आप मिट जाती है। यहा ँतक कि उन्होंने लंका नरेश रावण से भी युद्ध टालने की बराबर कोशिश किया है। इसी क्रम में उन्होंने युद्ध प्रांरभ होने के कुछ क्षण पहले तक युवराज अंगद को दूत बना कर भेजा है। प्रकारान्तर से उन्होंने रावण के भयंकर अपराध के बावजूद रावण के हित की बराबर चिन्ता किया है। इसी क्रम में वह अंगद से कहते हैं।'' ऐसी वार्ता ंकरना कि मेरा कार्य भी सिद्ध हो और रावण का भी हित हो।''

इसी संदर्भ में तुलसी ने कहा है :–

''काजु हमार तासु हित होई।
रिपुसन करे हुब तक ही सोई।।

इस प्रकार श्रीराम ने किसी शत्रुता का नहीं सिर्फ कार्य सिद्धि का उल्लेख किया। इस संदर्भ में श्रीराम का आशय यही है कि रावण को अपने द्वारा किए अपराध का ज्ञान हो जाये और पत्नी सीता उन्हें मिल जाये। इसलिए उन्होंने शत्रुता की किसी भावना का उल्लेख नहीं किया है। वैसे शत्रु शब्द का प्रयोग मात्र सीता हरण

की वजह से किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलसीदास के श्रीराम चरितमानस ग्रन्थ का वास्तविक प्रायोजन ही लोकहित के क्रम में सम्पूर्ण समाज को संस्कारित करना है। जिससे हर व्यक्ति स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण समाज की संतुष्टि के लिये समाज को जिस और जिस आचरण की आवश्यकता है प्रायः उसका वर्णन तुलसीदास ने श्रीराम चरितमानस में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार तुलसीदास जी ने अपनी रचना को पतित पावनी गंगा की तरह सम्पूर्ण समाज का कल्याण करने वाली कहा है। इस क्रम में उनके काव्य का मूल उद्देश्य ही लोक कल्याण है।

इस संदर्भ में तुलसीदास ने कहा है :-

''कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरिसम कर हित होई।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास की जब लोक कल्याण की नियति है– तो पुनः जीवन–उत्पत्ति का साधन प्रकृति उनके प्रभाव से कैसे अछूती रह सकती है। इसीलिये मानस में प्रकृति प्रेम का भी अनुपम चित्रण प्राप्त होता है। वैसे आज के वातावरण में इसको पर्यावरण चेतना भी कहा जा सकता हैं वैसे मानस में पर्यावरण चेतना अथवा प्रकृति प्रेम का सम्यक चित्रण किया गया है। शायद यही कारण है कि वन भ्रमण काल में श्रीराम ने जिस भी पेड़ के नीचे विश्रम किया है उसकी भूरिभूरि प्रशांसा उनके प्रकृति प्रेम का ही परिचायक है। इसी संदर्भ में तुलसीदास ने कहा है –

''प्रभु जेहिंत रूतर वैठहिं जाई
करहिं कल्पत रुता सूबड़ाई।।''

उनका विनय पूर्वक प्रार्थना करना प्रायः उनके प्रकृति प्रेम को स्पष्ट करता है। इसके सा थ–साथ ही पर्यावरणीय संतुलन की आवश्यकता को इंगित करता है। पुनः इसी क्रम में मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता को भी स्पष्ट करता है। बहरहाल गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकारान्तर से लंका काण्ड के ध र्म स्थप्रसंग में मानवीय जीवन के सार्वभौमिक और सांस्कारिक मूल यों को सूत्रात्मक शैली में प्रायः एक ही स्थान पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रायः जिससे अध्ययन, चिन्तन, मनन से मनुष्य अपनी जीवन यात्रा के हर क्षेत्र में सफल सिद्ध हो सकता है इसी क्रम में किसी भी तरह के युद्ध में उसका सफल होना नितांत सुनिश्चत माना गया है।

इसी संदर्भ में तुलसीदास ने कहा है :-

''सुनहु सखा कह कृपा निधाना।
जेहिं जयहोइ सोस्यन्दन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल विवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजुजोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान पर सुबुधि सक्ति प्रचंडा।

बरबिग्यान कठिन को दंडा।।
अमल अचलमन त्रोन समाना।
समज मनियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरपूजा।
एहिसम बिजय उपायन दूजा।
सखा धर्ममय असरथ जाकें।
जीतन कहँन कतहुँ रिपुताकें।।
महा अजय संसार रिपुजीतिस कइसो बीर।
जा कें असरथ होइ दृढ़ सुन हुसखा मति धीर।।'' [8]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलसीदास की यह सूत्रवतर चना वास्तव में समाज को पूर्णरूपेन संस्कारित करने की दिशा में अमूल्य प्रयत्न है। मानस का सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य मनुष्य के जन्म से मृत्यु पर्यन्त ही नहीं–जन्मान्तर तक सार्थक प्रमाणित होते है। यही कारण है कि विश्व – साहित्य के महान ग्रंथों में रामचरितमानस का स्थान बेहद महत्पूर्ण है। इसी से गोस्वामी तुलसी दास जी को अनेक प्राच्य एवं प्राश्वात्य विद्वानों ने विश्व कवि भी कहा है। इस क्रम में कहा जा सकता है कि सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों की सम्यक प्रतिष्ठा एवं उच्च कोटि की काव्यात्मकता प्रायः दोनों ही दृष्टियों से रामचरित मानस का महत्व एवं उपयोगिता आज वैश्विक परिवेश में स्वयं सिद्ध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सार्वभौम मानवीय मूल्य और मानव – श्रीनिवास पाण्डेय
2. सार्वभौम मानवीय मूल्य और मानव – श्रीनिवास पाण्डेय
3. तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य – डॉ० चरणदास शर्मा
4. श्रीरामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, दोहा क्रमांक 9, पृष्ठ क्रमांक 631, सचित्रसटीक मोटाटाइप, गीताप्रेस गोरखपुर
5. श्रीरामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा क्रमांक 7 चौपाई 1–5, पृष्ठ क्रमांक 687–688, सचित्रसटीक मोटाटाइप, गीताप्रेस गोरखपुर
6. श्रीरामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा क्रमांक 94 चौपाई 1, पृष्ठ क्रमांक 867, सचित्र सटीक मोटाटाइप, गीताप्रेस गोरखपुर
7. श्रीरामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा क्रमांक 32 चौपाई 3–4, पृष्ठ क्रमांक 743, सचित्र सटीक मोटाटाइप, गीताप्रेस गोरखपुर
8. श्री रामचरित मानस, लंका काण्ड, दोहा क्रमांक 79 चौपाई 1–6, दोहा क्रमांक 80, पृष्ठ क्रमांक 850–851, सचित्र सटीक मोटाटाइप, गीताप्रेस गोरखपुर

मोबाइल नं : 9669128900

ईमेलआईडी : patelsarojhere@gmail-com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 79-85

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैत्रीय पुष्पा के कथा साहित्य में नारी

डॉ0 शुभा बाजपेयी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एस0एन0सेन0 बा0वि0 पी0जी0 कॉलेज, कानपुर

नारी का मन सदियों से एक पहेली रहा है। वास्तव में आज भी हम अपने मन को समझना कठिन मानते है। नारी मन के जितने भी पहलू सामने आयें अभिव्यक्ति शेष ही रह जाती है। वास्तव में किसी चीज को पूर्णता से समझना अपने आप में कठिन कार्य है। एक ओर नयी आशायें है तो दूसरी ओर आर्थिक, सामाजिक साम्प्रदायिक, राजनितिक व अन्य परिवर्तित स्थितियाँ समय के साथ संस्कृति में भी परिवर्तन आ रहा है। नारी चारित्र हमारी संस्कृति का मुख्य हिस्सा है।

आधुनिकता के कारण और अनुसंधानात्मक बहस कहना एक चुनौती है। पाकर नर–नारी समानता की बात की गई। स्त्री मुक्ति के लिए आन्दोलन हुए। अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ–साथ अपने स्वयं की रक्षा के लिए हर मोर्चे पर लड़ने की तैयारी की गयी। परन्तु यथार्थ यह है कि आज भी नारी विषय चिन्तन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप महिलाओं ने अपने जीवन के भीगे हुए दर्द को अपनी कलम से लिखने की ठानी। अपनी जिंदगी और अपने वजूद को व्याख्यायित करने की मानी। इसी कारण सन् 1960 के बाद कई महिला लेखिकाएँ सामने आयी। जिनमें मैत्रेयी पुष्पा भी एक ऐसी लेखिका हैं जो सन् 1960 के बाद हिन्दी कथा साहित्य में प्रविष्ट हुई और आज अपनी खास पहचान बनाए हुए है।''

कहानीकार अपनी रचना में जिस कथावस्तु को अथवा पात्रों को प्रस्तुत करता है। उसका मूल आधार मानव–जीवन के विविध प्रश्न होते हैं। केवल कहानी ही नहीं अपितु सभी साहित्य कलाकृतियों का मूल उद्देश्य मनुष्य चरित्र को को जानने का रहा है। मनुष्य ही मनुष्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती रहा है। अन्त काल से मनुष्य अपनी और आपने आस–पास के मनुष्य की खोज कर रहा है। मनुष्य को उसके सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ जानने की जिज्ञासा के कारण ही कलाकृति को वह दूसरों तक पहँचाना चाहता है। यह विशेष उस मनुष्य की अच्छाई या बुराई उत्कृष्ट या निकृष्ट कुछ भी हो सकती है। इस विशेष को वह शब्दों में पकड़ना चाहता है। आरंभिक काल में असामान्य पुरूषों या स्त्रियों पर ही कहानियां लिखी जाती थी। असाधारण या काल्पनिक घटनाओं की उसमें भरमार हुआ करती थी। वहाँ कथावस्तु को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। पर कथा वस्तु विशुद्ध काल्पनिक या घटना प्रधान हुआ करती थी। चरित्र लेखक की कठपुतली मात्र होते थे। जैसे–जैसे अन्य शाखाओं में (समाज शास्त्र, अनुवंशिकता शास्त्र, मनोविज्ञान) मनुष्य का अध्ययन कई संदर्भो के साथ शुरू हुआ उसको अधिनुकता यथार्थता के साथ पहचानने की कोशिश शुरू हुई। जैसे–जैसे साहित्य में उभरने वाली मनुष्य की तस्वीर भी बदलने लगी। ''हिन्दी में प्रेमचंद पहले व्यक्ति थे जिन्होने साहित्य मे अभिव्यक्त मनुष्य को अधिक यथार्थ, जीवंत और स्वाभाविक बना दिया।

महिला लेखन के संदर्भ में मैत्रीय पुष्पा की यही भूमिका है कि मनुष्य अपना चेहरा ढूँढ रहा है। उसे वह कहीं मिलाता है, फिर जाता है। नारी की लंबी दास्ताँ है और वह अपने तरीके से आज जाना चाहती है। परन्तु रूढ़ि और परम्पराओं के कारण वह चाहकर भी अपने आप में वह परिवर्तन नहीं ला पा रही। जो वह खुद चाहती है। उसका चाहना एक ऐसी बात है जो सादियों की परम्पराओं को छेद दे सकती है और यह जो आदर्शो की बात है। टूटने की संभावना है परन्तु उसे तोड़–मरोड़ कर लांघकर अपना अस्तित्व बनाना उसे मुश्किल होता जा रहा है।

हिन्दी की नयी पीढ़ी अत्यंत सजंग और संवेदनशील लेखिका के रूप में मेत्रीय श्री को देखा जा सकता है। अपने नारीवादी भूमिका की कई कथाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें जीवन की एक नयी सच्चाई अत्यंत विश्वसनीय ढंग से पेश की गयी है। उनके चरित्र, उनके दुख दर्द उनकी आशा–निराशा, उनके भाव विचार आदि सब कुछ पाठको को अत्यंत विश्वसनीयता लगते है। मैत्रीय पुष्पा जी ने तीन कहानी संग्रहो की रचना की।

1. ललमानियाँ
2. गोभा हसती है।
3. चिन्हार।

इन कहानियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिल जाता है। जीवनाभुवों को झेलती उस पर मात करती हुई कठिनाईयों को चीरती हुई, प्रगति की ओर खुद को ले जाने वाली नारी आपकी कहानियां की मुख्य पात्र है। इन कहानी संग्रहो की प्रत्येक कहानी का अपना स्वतंत्र महत्व है। एक संदेश देने का कार्य इन कहानियों के माध्यम से लेखिका ने किया है। मैत्रीय पुष्पा जी की तीनों कहानी संग्रहों में से कुछ कहानियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ जिनमें समाविष्ट नारी जीवन विषयक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक, शैक्षिक समस्या का चित्रण है।

चिन्हार :– 1. अपना अपना आकाश :– यह कहानी कैलाशो देवी की है। एक वदृद्या जो बेटों की माँ है। प्रत्येक बेटा उसे बारी–बारी संभालता है। और दूसरे की संभालने की बारी आती है। तब समय से पहले ही उसका सामान बांध दिया जाता है। अगर उसने विवाह वह दिनेश के लिए सहज प्रात्य शरीर है। उस शरीर से परे अत्यत्र कुछ भी है, यह उसने जानने की चेष्टा न उसे छू पाने की।

यदि ऐसे में कोई आ जाए ? उस वीराने में उसके हृदय की धड़कने हथौड़े की तरह बजने लगी।''

यदि ऐसे में कोई आ जाए? उस वीरानें में उसके हृदय की घड़कने हथौड़े की तरह बजने लगी।''

उपर्युक्त तीनों विवचेनो से नारी की असुरक्षितता प्रतीत होती है। अपना आकाश में लेखिका ने ढलती उम्र में संतान होकर भी अकेले जीवन जीने की इच्छा होती है। यह कैसी मानसिकता है ? जब व्यक्ति अपनों से ही प्रताड़ित हो जाता है। तो उसमें जीने की जिवीविषा कम हो जाती है। कैलाशोदेवी चुपचाप सामान लेकर बाहर विकल जाती है। किसी को भी नहीं बताती बेटे यह सोचकर चुप बैठ जाते है कि गांव की तरफ की गई होगी। लखन देवर है। घर का आधार स्तम्भ चले जाने के बाद लखन कब आधार बन जाता है। पता नहीं लगता। जब बेटों की शादी होती हैं तो तीनों पिछली सीट पर बैठे होते हैं। लड़को के घर रहती है, तो गांव में लखिया और बिन्दो उसे इसलिए याद आते है क्योंकि जब तक वह घर नहीं आती थी।

कागज पर जब उसका अंगूठा लिया जाता है और पुरूखों की जमीन बेटे आपस में बांट लेते है तो उसे

बहुत दुःख होता है। जब उसे यह पता चलता है। इस कथा के शीर्षक में व्यक्ति को अपने तरीके से जीने का पूरा हक है। यही कैलाशोदेवी अंततः बता देती है।

बहेलिया :– यह कहानी एक ऐसी परिस्थितयों से जूझती हुई महिला की कहानी है जो एक नवजवान से आशाएं रखती है। पर जब उससे निराशा हो जाती है तो वह अंदर से टूट जाती है।

हिन्दू परिवार में गृहस्थ धर्म नारी के रूपों का निर्धारण करता है। भारतीय चिन्तन परम्परा एंव उसके विधान से यह स्पष्ट होता है कि समाज एवं उसके विद्यान से यह स्पष्ट होता है कि समाज एवं उसके विद्यान का आकर्षण केन्द्र पुरूष रहा है और पुरूष का आकर्षण केन्द्र नारी। पुरूष सभी जिम्मेदारियों का कर्ता है। ओर वही सभी विधि–विधानों, कार्य व्यवस्थानों एवं परम्पराओं का नियामक भी है। यही कारण है कि समाज ने सदैव उसे महत्व दिया है और नारी को मानुषंगिक रूप से वह भी स्वंतत्र रूप नहीं अपितु की अनेक जिम्मेदारियों में एक दायित्व के रूप में। चूँकि बाहर संघर्ष है, कर्मक्षेत्र इतना रूक्ष है कि पुरूष स्त्री और गृह को जीवन की आश्यकताओं में एक एक समझता है।

नारी के बारे में विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति है पर वास्तविक रूप में चित्रण करने पर उसके मानोभावों का विश्लेषण करना कठिन है। गिरिजा की परवरिश चाचा–चाची करती है। एक बहन को क्षय रोगी से ब्याहा जाता है। पति जो अत्याचार होता है उसके अन्याय, अत्याचार वे वह बैचेन हैं। भोली के शरीर में जो बदलाव होता है उससे माँ को पता लग जाता है। नाम बताने से इसलिए इंकार करती है कि उसे धमकी दी जाती है। कि नाम बताने पर खेत जलायें जायेंगे। वह क्या करती ? खुद को जला देती है। मास्टर जी बचाने जाता है उसे भी मार दिया जाता है। अपनी मरी हुई बहन का बेटा सूरज जो पाल–पोसकर गिरिजा ने बड़ा किया था अफसर बना। उससे गिरिजा को अपेक्षाएं थी। वह जब सुनती है कि शोष वाणिय कन्या को अफसर को सौपने की बात तो आवेदन पत्र चार चिट्ठियों में विभाजित कर देती है।

चिन्हार :– चिन्हार एक ऐसी मां की कहानी है जो अपनी भावनाओं को महत्व को इसलिए छुपाती है कि वह उसकी बेटी की परवरिश अच्छी तरह से नहीं कर सकती थी। जब कि उसकी ननद उसे वह परिस्थिति दे सकती थी। उसके विकास की भावना को लेकर वह अपनी भावना छुपा लेती है।

इस कथा संग्रह में मानवीय संवेदना से लगभग सभी प्रश्नों को हुआ है। बेरोजगारी, अशिक्षा, अत्याचार आदि जो बाते है उनसे मन की जो उद्विग्न अवस्था निर्माण हो जाती हैं उसका वर्णन आ जाता है। इस कथा संग्रह मे न केवल नारी बल्कि पुरूष जो संवेदनशील है उसकी मन की अवस्था का वर्णन किया है। गिरीजा इसका उदाहरण है। बहेलियों में व्यक्त समस्या में बचाने वाला मास्टर जो मारा जाता है। सत्य के साथ जीना मुश्किल होता जा रहा है। मानवीय भाव–भावनाओं को नये सिरे से रखने की कोशिश मैत्रेयी पुष्पा यहाँ करती है। भाषा में वह गुण है जो पाठक को उस कृति से जोड़े रखती है अनेक ऐसे विचार जो है अप्रस्तुत है इन्हें प्रस्तुति देने का काम, उसे व्यक्त करने का काम मैत्रेयी जी ने किया है।

मैत्रेयी जी के दूसरी कहानी संग्रह गोमा हँसती है जिसमें नारी जागरण की बात कही गयी है। जिसके कुछ अंश इस प्रकार है।

रास :– इस कहानी मे मैत्रेयी ने उस नारी सुलभ भावनाओं का वर्णन किया है जो प्रत्येक नारी में स्थित होती है।

दाहिने तरफ वाले तकिए पर एक हल्का सा गडढा था पलंग के सिरहाने वाली पाटी पर एक सिगरेट दबाकर बुझाई गई थी। टुकड़ा नीचे पड़ा था।

उसकी बेटी को जिन्दा न चाहते हुए भी किसी की वासना का शिकार होना पड़ता है। और उसे परिवार मे मार खानी पड़ती है। ''आदमी और दीवारे'' में माता–पिता भाई सभी की नारी को गलियाँ खानी पड़ती है। 'असमर्थ हिलता हाथ' की मोना का अपने भाई के दोस्त दिलीप के साथ प्रेम हो जाता है। मोना के घर में पता चलते ही कुहराम मच जाता है। उसका भाई चिल्लाता हुआ कहता है, मैंने आइन्दा तुमको कभी उसके साथ देख लिया तो मार डॉलूँगा। नही जानता था कि वह आस्तीन का सांप है।'' उसकी जिन्दगी इन दोनों के बीचे अंधेरे में भटक जाती है। एक और घर है। माँ है, भाई है, और दूसरी ओर उसका प्रेमी पति है जो विवाह के लिए बार–बार आग्रह करता है। वह जिन्दगी को सिर्फ बर्दास्त कर रही है या निभा रही है वह सही अर्थो में जी नहीं रही है।

नायिका प्रधान वह यह कहानी जयमंति की है। गांव में रामलीला रची जाती है। मनसुखा महाराज का प्रवचन है। इसलिए सब लोग जाते है। जयमंति भी प्रवचन मे समाविष्ट है। सब लोग रासलीला में कुछ रास नहीं है तो जयमंति के मन में घंटिया बजती है। उसे रासलीला में कुछ रास नहीं है। वह महाराज को देखती रहती है। महाराज को जितना भूलने की कोशिश करती है। उतनी उसकी छवि अधिक गहराई से उसके मन में उतरती अनुभव करती है। मनसुखा महाराज भी जयमंती की भावना को समझने लगते है। जब जाने का समय आ जाता है तब जयमंती का मन बोझिल है।

सूनी बाराबर में मौन चीखें गूंज रही है। सांझ की धूप। जयमंति वास्तव में बहुत मेहनती लड़की है। सब तरह के कष्ट सहने को हमेशा तैयार रहती है वह कहीं से भी प्रेम जुटाना चाहती हैं। महाराज उसे मिल जाते है जय मंति की सूनी जिन्दगी मे फिर बाहर आ जाती हैं।

बारहवीं रात :– यह कथा दहेज प्रथा के खिलाफ आवाज उठाने वाली नवयुवती की कथा हैं। जब लड़की घर से आती हैं। तो अपने सारे सर्म्पको और संबंधो को वही छोड़ आती हैं। उनमें बहुत से अच्छे होते हैं। बहुत से बुरे भी बहुत से आवश्यक होते हैं। बहुत से मधुर होते हैं। लेकिन उनमें से वह कुछ को भूल जाती हैं। कुछ को वह भुला देती हैं।

मृत्यु पर जी भर कर रो भी नहीं सकीं। अगर रोती तो लोग जाने क्या कह बैठते । शायद किसी ने सच–सच भाँप लिया होता, तो वह आनाम, प्यार–रिश्ता धूल में लोटने लगता, कीचड़ से सन जाता और उस संबंध को एक बहुत ही सरल और सामान्य–सा नाम दे डालता।

मति के स्पष्ट हो जाने पर मुझे नरक मिलेगा इसका मुझे डर नहीं। उमर बड़ी दगाबाज चीज है जवानी के दिन जेवर तुड़ाकर भागते है, और आदमी फिर पड़ा दिखता है बुढ़ापे के सिवाने में। बूड़े आदमी के क्या रास रंग।

संभाषण शैली में लिखी गई यह कहानी उस औरत की है जो ब्याह में तय हो जाने वाली रकम न लौटाने से सतायी जा रही है। वह कुछ कह कहीं पा रही है। अंदर ही अंदर उसे बहुत तकजीफ होती है और एक दिन वह खुदकुशी कर लेती है। बेटा जेल में है। माँ बेटे की शादी एक दो दिन में ही करना चाहती है। क्योंकि दूसरी पार्टी उसे पैसा देने को राजी है। वह सोचती है कि जेल से बेटा भी पैसा देकर रिहा हो जायेगा और उसे नई

दुल्हन भी मिल पायेगी। इस हिसाब से वह कार्य करना चाहती है। परन्तु ब्याहने वाली बेटी ही इनकार करती है यह कहकर कि मैं ऐसे व्यक्ति से शादी नहीं करना चाहती जिसने पहली पत्नी को खुदकुशी करने पर मजबूर किया और वह चाहती जिसने पहली पत्नी को खुदकुशी करने पर मजबूर किया और वह कुँवारी रहना पसंद करती है पर शादी करना नहीं। इस कहानी में दहेज के खिलाफ आवाज उठाने वाली कुमारियों के बारे में विचार व्यक्त पड़ा है उसका वर्णन है। नई पीढ़ी को आयोग्य वर को ना कहने की ताकत यह कहानी देती है।

गोमा हसती है :- यह कहानी किग्ड़ा और गोमा की है। दांपत्य जीवन में पत्नी का एवं पति का प्यार ही मन में उत्साह उमंग निर्माण करता है और उससे घर गृहस्थी व्यवस्थित चलती है। इस कहानी में नारी के विभिन्न अर्थो के बारे में चर्चा की गई है। उसके अनेक रूप है।

मैत्रेयी जी ने स्त्री को शक्ति की पहचान कराने का प्रयत्न किया है। वह 'अपनी बात' में कहती है में उस सनातन शाश्वत के सामने देख रही थी, जिसकी मृत्यु निश्चित थी। तो यह वही समय है, जो जीवन को मथकर निकला है। बेशकीमती, अमूल्य है ये आजादी की रणभेरियाँ गुँजाती वंचित अस्तिमाएं।

ललमनियाँ :- इस कथा में मैत्रेयी जी ने कलाकार के अभिव्यक्ति को महत्व दिया है। कलाकार अपने कला के प्रति एक लगाव अपनापन रखता है वह किसी भी समझौते पर कला से दूर नहीं जा पाता। 'ललमनियां' इस कहानी में कलाकार की बात है। ललमानियां एक प्रकार का नृत्य है। और नायिका को जब कहा जाता है कि शादी के बाद तुम यह नहीं कर सकेगी। नहीं तो विवाह नहीं हो पाएगा। इस शर्त को नायिका कबूल नहीं करती। जो कला उसे ज्ञात है उसे रोकने से वह अपनी भावनाओं को व्यवक्त नहीं कर सकती थी शायद इसीलिए उसने यह बात स्वीकार नहीं की।

इस कहानी में मैंत्रेयी ने नायिका को अत्यंत स्वाभिमानी बताया है। अपने जीवन में घटित घटना को वह बहुत सरलता से लेती है और जो भावना अपने जीवन में घटित घटना को बहुत ही सरलता से लेती है और जो भावना वह मुंह से व्यक्त नहीं कर पाती वह भावना वह अपने नृत्य द्वारा उद्घाटित करती है। खुद की बेटी को भी स्वाभिमान से बड़ा करती है। 'अम्मा की सूखी आंखो में से पानी की धारा फूट पड़ी। वे दहाड़ मारकर रोने लगी। यह बात आज तक समझ में नही आयीं कि अम्मा किस बात पर रोयी थी? अपने बच्चों की भूख पर? बापू की मौत पर? या ललमनियाँ की बिन भोग अराधना पर?

मैत्रेयी जी ने इस कथा में ऐसी मान्यताओं को प्रस्तुत किया है जो जीवन में घटित घटनाएं होती है जिसका विरोध हम नहीं कर पाते है। विपरीत परिस्थिति में भी नायिका राह बना लेती है। और अपने जीवन में एक ऐसा आदर्श स्थापित करती है जिससे कलाकार अपनी कला के प्रति हमेशा गर्व की भावना महसूस करें। यह कहानी अत्यंत रोचक एवं पठनीय हैं। ललमनियां इस कहानी–संग्रह को यह नाम दिया गया वह भी सार्थक है। अन्य कहानियाँ भी अपने–अपने दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के कहानी–संग्रह विचार, गोमा हँसती है और ललमानियाँ देखने पर पता चलता है कि मैत्रेयी ने अपनी इस कहानियों में उन तमाम प्रश्नों को उजागर करने की कोशिश की है नारी जीवन से संबंध रखती है। स्त्री को आत्मसम्मान आस्तित्व के लिए लड़ने को प्रेरित करती हुई कहानियां दिखाई देती है। चिन्हार कहानी संग्रह में रहने में चढ़ा–बुढ़ापा, बिकी हुई आस्थाएं कुचले हुए सपने धुँधलाता भविष्य नहीं दुख–दर्द की घटनाओं के बाने–बाने से बुनी ये कहानियां इक्कीसवी शताब्दी की देहरी पर दस्तक देते भारत के ग्रामीण समाज का

आइना है। एक ओर आर्थिक प्रगति दूसरी और शोषण का एक सनातन स्परूप। चाहे अपना–अपना आकाश की अम्मा हो चिन्हार की सरजू या आक्षेप क रमिया या भंवर की विरमा–सबकी अपनी–अपनी व्यथाएं है, अपनी–अपनी सीमाएं। इन्ही समीओं में बंधी इन मरणोन्मुखी मानव प्रतिभाओं का स्पंदन सहल जी सर्वत्र अनुभव होता है, प्रायः हर कहानी में। लेखिका ने अपने लिए हुए परिवेश को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है, जिस स्वाभाविकता से, उससे अनेक रचनाएं, मात्र रचनाएं न बनकर अपने समय का, अपने समाज का एक दस्तावेज बन गयी है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है मैत्रेयी जी नारी स्वतंत्रता की पक्षरधर है। वह नारी व्यक्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा सामाजिक जागृति, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, परिवेशगत परिवर्तन आदि के कारण नारी में नया आत्मविश्वास निर्माण हुआ है। यह स्वावलंबी और स्वयं पूर्ण बनकर अपने निर्णय लेने में सक्षम बन रही है। इसके कारण परिवार पारवारिक संबंध और समाज में संघर्ष करती, टूटती, बिखरती तो कहीं अपने आपको स्थापित करती नारी का रूप कहानियाँ में उभर रहा है। घर की चार दीवारी से बाहर करती नारी का रूप कहानियों में उभर रहा हैं घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर नारी जीवन के हर क्षेत्र में अपनी भूमिका निभा रही है। उसके अनुभव क्षेत्र व्यापक हो रहे है और अपनी नई भूमिका और नए कार्यक्षेत्रों में वह अग्रसर हैं। वह पुरूष की प्रतिष्ठा से स्पर्धा नहीं समान अवसर और सहयोग चाहती है। स्त्री पुरूष की प्रतिष्ठा लिंग के आधार पर नहीं बल्कि गुणों के आधार पर हो ऐसी उसकी इच्छा हैं। वह समाज में अपने व्यक्ति रूप की प्रतिष्ठा चाहती है। वह परम्परागत जीवन मूल्यों का केवल अनुकरण करनें के बजाय उन्हें तर्क की कसौंटी कर कसना चाहती है। अनुचित रूढ़ियों, परम्पराओं एवं गलत मूल्यों को नकारने का साहस उसमें निर्माण हुआ है। जिसके कारण समाज और संस्कृति में मूल्यों का संघर्ष निर्माण हो रहा है। जिसके कारण समाज और संस्कृति में मूल्यों का संघर्ष निर्माण हो रहा है। व्यक्ति स्वातज्य, बंधुत्व, मानव समानता तथा न्याय के प्रति उसकी आस्था बढ़ी है। वह परम्परागत अनुचित मूल्यों को अस्वीकृत कर नए मूल्यों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। वह मूल्यों की तलाश है। आज की नारी के कदम भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं जिसमें वह एक नयी व्यवस्था का निर्माण एवं स्त्री पुरूषों की साझा मानवीय संस्कृति चाहती हैं। मैंत्रेयी जी ने जो नारी प्रस्तुत की है वह परम्परागत मान्यताओं, धारणाओं और नैतिकता के नियमों को नकारने लगी है। यौन भावना, काम संबंध, दांपत्य जीवन आदि के संबंध में उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। पति परायणता को ही स्त्री चरित्र मानने वाली सामाजिक नैतिकता के पुराने मूल्यों का वह आवश्यकतानुसार विरोध करने लगी है। अब विशिष्ट स्थिति में विवाह पूर्व और विवाहोत्तर यौन संबंध स्वीकृत होने लगे है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानियों में नारी मन को रखा है। नारी मन की सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति कृतियों की पहचान है। नारी शरीर नारी मन और नारी भावनाओं की अपनी विशेषता होती है जिसे इन कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उन्होंने स्त्री मन के अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा बनायी है। गीतो मुहावरों, लोकोक्तियों, सुविचारों, लोक कथाओं, फागों, गालियों वाली मैत्रेयी जी की भाषा सच्चे व्यक्ति के हृदय तक पहुँचने में देर नही लगती।

निष्कर्षता : यह कहा जा सकता है कि नारी की नयी पहचान बनाने में मैत्रेयी पुष्पा जी एक सफल साहित्यकार है। भविष्य की मानव सभ्यता और मानव संस्कृति के निर्माण में मैत्रेयी जी का साहित्य नारी जीवन को नया

आयाम देगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन–डॉ0 शोभा यशवंते–भूमिका।
2. हिन्दी में आधुनिकतावाद–डॉ0 दुर्गा प्रसाद गुप्त–पृ0सं0–15
3. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन–डॉ0 शोभा यशवते–पृ0 44
4. उषा प्रियंवदा–जिन्दगी और गुलाब के फूल–पृ0 102
5. उषा प्रियंवदा–दो अधेरे–पृ0 101
6. महीप सिंह–उजाले के उल्लू–पृ0 57
7. डॉ0 श्याम चरण दुबे–मानव और संस्कृति–पृ0 106
8. महात्मा गांधी–महिलाओं से पृ0 31
9. गोमा हंसती है–उजदारी–पृ0 110
10. कमलेश्वरी–मांस का दरिया–पृ0 8–9
11. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन डॉ0 शोभा यशवंते–पृ0 75,73,74
12. रघुवंश–आधुनिकता और सर्जनशीलता–पृ0 46
13. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन–डॉ0 शोभा यशवंते–पृ0– 50,51

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha
June 2023

ISSN : 2395-7115
Page No. : 86-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'एक हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के सन्दर्भ में'

डॉ० सुमन कौशिक
सी.एम.आर युनिवर्सिटी, बेंगलूर कर्नाटक ।

"निज भाषा उन्नित अहै, सब उन्नित को मूल ।
बिन निज भाषा के ज्ञान के मिटत न हिय के शूल ।।

हिन्दी भाषा :–

हर देश की पहचान उस देश की भाषा और संस्कृति और साहित्य से ही होती है किसी भी देश की एकता में उस देश की राष्ट्रभाषा अहम भूमिका निभाती है। हमारे देश की राजभाषा हिंदी है हिंदी हमारे देश के लगभग सभी राज्यों में बोली जाती है । हमारे देश में बहुत ही कम राज्य हैं जहाँ हिंदी भाषा को लोग कम जानते हैं जो नहीं जानते हैं फिर भी वे हिंदी भाषा को जानना चाहते हैं। और यदि हिंदी भाषी क्षेत्रों की संस्कृति के बारे में जानना हैं तो हिंदी भाषा जानना जरूरी हो जाता है। मनुष्य जिज्ञासु प्रवृति का जीव है उसे नयी जानकारियाँ जुटाना प्राचीनकाल से ही अच्छा लगता है। दक्षिण भारत के लोगों को 100 वर्ष पहले हिन्दी भाषा का बहुत कम ज्ञान था। महात्मा गाँधी जी के प्रयास से 1920 ई० में दक्षिण भारत में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, का निर्माण चेन्नई में किया गया और दक्षिण भारत में हिंदी भाषा पढ़ने –लिखने की रुचि को जाग्रति किया जिससे देश में एकता की लहर दौड़ गयी। और हिंदी भाषा का देश को आजाद कराने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। भारत के राज्यों में अधिकतर लोग केवल हिन्दी भाषा को ही जानते हैं। विदेशों में भी हिन्दी भाषा अपनी पहचान दिनों दिन बढ़ाती जा रही है। 10 जून 2022 को संयुक्त राष्ट्र ने हिंदी भाषा को प्राथमिकता दी है जहाँ अरबी, मेड्रिन, इंग्लिश, स्पेन इन भाषाओँ का प्रयोग होता है वहाँ हिंदी भाषा को भी सम्मीलित किया गया है। अब से हिंदी @ UN आदि पेज बनाया गया है। यह मिशन 2018 से चल रहा था। जिसे अब सफलता प्राप्त हुई है। "मेरा अपना अनुभव भी है जब हम विदेशों में अपना भारतीय होने का परिचय देते हैं असन्यास ही विदेशी लोगों के मन में एक प्रश्न उठाता है ये भारतीय हैं तो हिन्दी भाषा इन्हें अवश्य आती होगी। कुछ वर्षों पूर्व मुझे इन्फोर्स्सी कम्पनी में कुछ इंजीनियरस को हिंदी भाषा सिखाने का मोका मिला। उस समय कुछ रोचक तथ्य मेरे सामने आये। कुछ इंजीनियरस तो आयु में मेरे से बड़े थे। उन्होंने बताया की जब कभी विभिन्न देशों के लोग एकत्रित होते हैं और वे कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेते हैं और हिन्दी भाषा नहीं आने पर उन्हें काफी बूरा महसूस होता है। क्योंकि अन्य देशों के निवासी अपने देश की भाषा में सांस्कृति कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं ? जैसे स्पेनिश, जर्मनी, अरबी, रसियन आदि। और यदि कोई हिंदी भाषा में कार्यक्रम देता भी है तो हम समझ नहीं पाते, इसलिए हमें

हिन्दी भाषा सीखना जरूरी है एक और ने बताया मेरे पोते –पोतियों को हिंदी आती है लेकिन उन्हें हिंदी भाषा नहीं आती है। उनके संवादों को वे समझ नहीं पाते। जिससे वे अपने आपको असाह महसूस करते हैं। एक और इंजीनियर ने बताया कि मेरे बच्चों के स्कूल में हिन्दी भाषा पढ़ना जरूरी है मैं उनका होम वर्क कराने में असमर्थ हूं इसलिए कृपया मुझे हिंदी भाषा सिखा दें। ये सभी लोग विदेशों में इंजीनियरस रह चुके हैं और करोड़ों रूपये का वेतन पाते हैं। इनको सुनने के बाद मुझे एहसास हुआ। कि एक भाषा हमारे लिए कितनी महत्वपूर्ण है हिन्दी भाषा विदेशों में हमारा भारतीय होने का प्रतिनिधित्व करती है हम दुनिया के किसी भी कोने में रहे भाषा से अपनी पहचान अलग बना सकते हैं। और एक बड़े समुदाय से भी जुड़ सकते हैं। दक्षिण भारत में लोग कई भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। जैसे इंग्लिश, तमिल, तेलगु, कन्नड़, कोंकणी, मलयालम आदि । दक्षिण भारत के सभी राज्यों की जानकारी जुटाना वहाँ के निवासियों को आसन लगता है। उत्तर भारत के बारे में हिन्दी भाषा का ज्ञान न होने पर जानकारी जुटाना कठिन हो जाता है ।

शिक्षा :–

नई शिक्षा नीति (2020–21) के अनुसार भारतीय भाषाओँ को बढ़वा दिया जाने का प्रवधान रखा गया है। किसी भी विषय को आसानी से समझने के लिए विधार्थीयों को कम समय लगेगा। और देश के ऐसे हिस्सों में भी बच्चों तक जानकारी पहुंचेगी जहाँ पर बच्चों को अंग्रेजी भाषा नहीं आती है। वे सभी उन विषयों को भी अब पढ़ पाएगें जिन्हें पहले पढ़ने में कठनाई होती थी। अभी मेडिकल और इंजीनियरिंग जैसे कोर्सों की पढ़ाई हिन्दी भाषा में देने का प्रावधान रखा गया है। जिससे हर वर्ग के बच्चे जीवन में आगे बढ़ने की क्षमता रखेगें। दूसरा आज के समय में इंग्लिश स्कूलों के कारण स्कूलों में हर विषय इंग्लिश में ही पढ़ाया जाता है। और बच्चे अपनी प्रादेशिक भाषा (हिंदी) को पढ़ाने में रुचि नहीं रखते। जिसके कारण बच्चे अपनी संस्कृति से भी दूर होते जा रहे हैं। हमारी देश की भाषाओँ का विस्तार हो और दूर– दराज के क्षेत्रों का विकास हो। इस उदेश्य को ध्यान में रखते हुए भाषाओँ विस्तार का अवश्य है।

साहित्य :-

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल आधुनिक काल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, गघ की विधाओं में कहानी, उपन्यास नाटक, एकांकी यात्रावृतांत, रिपोताज, जीवनी आदि समय के अनुसार भाषा में भी बदलाव हुआ है । आदिकाल में अपभ्रंश भाषा का प्रयोग हुआ कवि चन्द्रबरदाई ने पृथ्वीराजरासो ग्रन्थ की रचना की। वहीं भक्तिकाल में कबीर की भाषा को स्धुक्कडी कहा गया है। तथा कबीरदास ने निर्गुण राम की उपासना की है। अवधि, ब्रज भाषा में ग्रन्थों की रचनाओं हुई है रामचरितमानस अवधि भाषा का महाकाव्य है जिसमे श्री राम के चरित्र को कवि तुलसीदास जी ने लोकमंगल, लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। वहीं सूरदासजी ने ब्रजभाषा में कृष्ण, की बाल लीलाओं से अपने जीवन को संवारा है। अष्ठ्छाप कवियों ने भी अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। भक्तिकाल में सभी कवियों ने अपने आराध्यदेव की स्तुति में गुणगान किया है इस भक्ति का असर आज के समय में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक ऐसा समयकाल है जिसमे अनेकों ग्रन्थ लिखेगे हैं। और इन ग्रन्थों का प्रभाव समाज पर प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। इसलिए "भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा गया है। ''रीतिकाल में भक्तिकाल की अपेक्षा राजाओं के आश्रित होकर कवियों ने अपनी रचनाएं की हैं। बिहारीलाल कवि इस काल के प्रमुख कवि

माने जाते हैं। इनका 'बिहारी सतसई, के नाम से इनका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिसमें 700 दोहे संकलित हैं।

"सतसईया के दोहेड़े जों नाविक के तीर,
देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर ।।" (बिहारी सतसई)

बिहारीलाल जी ने लिखा भले ही कम है लेकिन उनके निति के दोहों में शिक्षा और प्ररेणा भरपूर रूप से मिलती है। रस, छंदों अलंकारों का प्रयोग इसकाल के काव्य में भरपूर मात्रा में हुआ है।

आधुनिक काल में गघ और पघ दोनों विधाओं में ही रचनाओं हुई हैं गघ विधा आधुनिक काल में ही प्रारम्भ हुई। इस विधा ने आधुनिक काल में हर क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाई कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सब गघ भाषा में लिखे गये अनेक लेखक और कवि इस काल में प्रसिद्ध हुए हैं भारतेंदु हरिश्चन्द्र पहले गघ विधा के प्रारम्भिक साहित्यकार माने जाते हैं। जिन्होंने गघ में नाटक, कहानियाँ, उपन्यास लिखें है। हिंदी गद्य साहित्य को नये आयाम प्रेमचंद जी ने दिए। हिंदी सम्राट के नाम से इन्हें जाना जाता है। उनके गघ में भी काव्य की अभिव्यंजना देखने को मिलती है गोदान एक उपन्यास होते हुए भी एक महाकाव्य प्रतीत होता है। प्रेमचंदजी के लगभग 300 कहानियाँ और 12 उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि हिंदी साहित्य में निहित हैं। प्रेमचंदजी ने अपने लेखन में किसानों और दलित वर्ग की समस्याओं को पूर्ण रूप से उजागर किया है। समाज में फैली कुरीतियों को अपनी अलग दृष्टि से सबके सामने रखा है। प्रेमचंदजी ने हिंदी भाषा को अपने लेखन के द्वारा नये आयाम दिये उनकी भाषा शैली ऐसी है कि पाठक पढ़ने के पश्चात् उनके किस्से, कहानियों को भूलता नहीं है। चाहे वर्षों बीत जाए।। उनके द्वारा प्रयोग किये गए मुहावरे, लोकोक्तियाँ ऐसे लगते हैं कि इस वाक्य ही से मुहावरे का निर्माण हुआ है। एक उदाहरण" दाए –बाए चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही शुत्रु के किले में सुराख कर रहा हो अगर इस समय वह पकड़ ली गई फिर उसके लिए माफी या रियात की कोई रत्तीभर उम्मीद नहीं, देवताओं को याद किया और घडा कुएं में डाल दिया (ठाकुर का कुआं प्रेमचंद) "संघर्ष और परोपकार की ऐसी एक कहानी जो पिता से हर पुत्र को सीखनी चाहिए,, ('सुजान भगत, प्रेमचंद) आधुनिक काल में अनेक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ आदि छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, हालावाद, नयी कविता, दलित साहित्य, किन्नर साहित्य आदिवासी साहित्य आदि।

छायावाद : हिंदी साहित्य के रोमांटिजम्स उत्थान की वह काव्य धारा है जो लगभग 1918 से 1936 तक की प्रमुख युगवाणी रही है छायावाद के मुख्य रूप से चार स्तम्भ हैं जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रा नन्दपन्त, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी छायावाद के नामकरण का श्रेय श्रीमुकुटधर पाण्डेय को जाता है।

प्रयोगवादः प्रयोगवाद कवियों ने काव्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों को ही महत्व दिया है इन कवियों ने नये प्रतीकों, नये उपमानों एवं नवीन बिम्बों का प्रयोग कर काव्य को नवीन छवि प्रदान की है। प्रयोगवाद का समय 1943 से 1953 तक माना गया है इसके प्रमुख कवि डॉ. नगेन्द्र, अज्ञेय जी राघेराघव हैं।

प्रगतिवादः प्रगतिवादी कवियों ने किसान, मजदूर पर किए जाने वाले पूजीं पतियों के अत्याचारों के प्रति अपना विद्रोह व्यक्त करना, सामाजिक यथार्थ का चित्रण, गरीबी भुखमरी अकाल और बेरोजगारी उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के अंतर को समाप्त करने पर बल दिया है। प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल, राम विलास शर्मा, नागार्जुन, निराला, रांगेय राघव, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि।

दलित साहित्य : दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें दलित समाज की समस्याओं को उजागर किया गया हो और उनका हल भी निकाला गया है जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित उपन्यास 'छप्पर, दलित समाज पर लिखा गया पहला उपन्यास है इस रचना का प्रकाशन 1994 में हुआ इस उपन्यासों में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं, अम्बेडकर सिद्धान्तों से प्रेरित है और दलितों की संवेदना को दर्शाता है। कहानी संग्रह सरई के फूल, बाँस का किला पथेरा

गदल, शिलान्यास, आदि उपन्यास और कहानियाँ लिखी गये हैं ।

किन्नर समाज : महेंद्र भीष्म द्वारा रचित 'किन्नर कथा उपन्यास, किन्नरों पर लिखा गया उपन्यास है इस उपन्यासों में किन्नरों की दशा को एक पीड़ित समाज के रूप रखा गया है। खुशवंत सिंह ने 'भागमती, हिजड़े के माध्यम से दिल्ली शहर के हिजेड़ों की कथा –व्यथा को प्रस्तुत किया है। साहित्यकार चिनुआ अचेबे "शेर जब तक अपना इतिहास स्वयं नहीं लिखेगें तब तक इतिहास में शिकारियों का ही महिमामंडल किया जाता रहेगा।'' साहित्य इस बात का गवाह है कि स्वयं को अपने हक की लड़ाई हर किसी को लड़नी पडती है। समाज बदल रहा है और बदलाव जरूरी है

संस्कृति : हमारा भारत देश विभिन्न बोली –वाणियों, भाषा, खान–पान, संस्कृतियों विश्वासों से गुंथा ऐसा महान देश है, जिसमें हर प्रदेश अपने में कमोबेश एक पूरी संस्कृति है कर्नाटक से कश्मीर, गुजरात से बंगाल तक देखें। भिन्नता में एकता देखने को मिलती है कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में "किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया कलापों के पूर्ण परिचय के लिए लोक संस्कृति और संस्कृति परस्पर अपेक्षित रहती हैं । इस दृष्टि से अर्थवेद, ऋग्वेद का पूरक है। यह दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। "संस्कृति एक सभ्य समाज का निर्माण करती हैं और आने वाली पीढ़ियों को संदेश देती है। जिससे हमारी सभ्यता की जड़ें मजबूत रहती हैं ।

"मातृभाषा बिन व्यर्थ है दुनिया का सब ज्ञान ।
भारत माँ की बोली हिंदी करो इसका सम्मान ।।"

सन्दर्भ :–

1. भारतेंदु हरीशचंद्र के शब्दों ।
2. बिहारी सतसैई से ।
3. कहानी 'ठाकुर का कुआं, मुंशी प्रेमचंद
4. साहित्यकार चिनुआ अचेबे के शब्दों में
5. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति का रूपरेखा, पृष्ठ, सं–12

Email address : suman-k@cmr-edu-in or
sumankaushik2k18@gmail-com
PhoneNumber : 9886357601

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 90-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"अतीत की झलक : भारत का अंग इंडोनेशिया"

सुमन कुमारी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

अखण्ड भारत, भारत के अविभाजित स्वरूप को कहा जाता है। प्राचीन काल में इंडोनेशिया भी अखण्ड भारत का ही हिस्सा था जिसके प्रमाण इंडोनेशिया के इतिहास में साफ–साफ मिलते हैं। इंडोनेशिया के इतिहास के अनुसार यहाँ मूल रूप से हिंदू और बौद्ध धर्मानुयायी ही रहा करते थे। लेकिन 8वीं शताब्दी में मुस्लिम व्यापारी इंडोनेशिया से आकर्षित हुए और उनकी संख्या में यहाँ बढ़ोतरी हुई।

पहली शताब्दी में हिन्दू धर्म विभिन्न व्यापारियों, धर्म गुरूओं के माध्यम से इंडोनेशिया में पहुँचे। इंडोनेशिया में श्रीविजय राजवंश, शैलेन्द्र राजवंश, संजय राजवंश, माताराम राजवंश, केदिरि राजवंश, सिंहश्री, मजापहित साम्राज्य का शासन रहा। 7वीं–8वीं सदी तक इंडोनेशिया में पूर्णतया हिन्दू वैदिक संस्कृति ही विद्यमान थी। यहाँ 13वीं सदी तक बौद्ध धर्म विद्यमान रहा। इसके पश्चात् 1400 ई0 में अरब व्यापारियों के माध्यम से इस्लाम का विस्तार हुआ। इसके बाद हिन्दू धर्म पिछे छूटता चला गया और इस्लाम को लगातार बढ़ावा मिलता रहा।

300 ईसा पूर्व में जब भारत पर सम्राट अशोक का राज था, उसी दौर में इंडोनेशिया के अंदर भी हिन्दू साम्राज्यों का राज था। जावा और सुमात्रा यहाँ के दो सबसे बड़े द्वीप है, जहाँ पर हिन्दू साम्राज्यों की शुरूआत हुई। इंडोनेशिया पर लंबे समय तक हिन्दू और बौद्ध राजाओं का शासन रहा। 1511 ई0 में जब पुर्तगालियों ने इंडोनेशिया को जीता, तब यहाँ मुस्लिम सुल्तान का ही शासन था। साढ़े तीन सौ साल के डच उपनिशेवाद के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्वतंत्रता हासिल हुई। 17, अगस्त 1945 ई0. में इंडोनेशिया को नीदरलैंड से आजादी मिली। इंडोनेशिया के पहले राष्ट्रपति सुकर्णों के नेतृत्व में ही इंडोनेशिया ने आजादी हासिल की थी। फिर वहाँ विद्रोह ने जन्म लिया। लगा कि सारा सिस्टम उलट–पुलट जाएगा। तब सुकर्णों ने एक सैनिक राज शुरू कर दिया। वे तानाशाह बन गए। वर्षों तक यही सिस्टम चलता रहा। साल 2004 में यहाँ लोकतंत्र आया। पहली बार इंडोनेशिया में राष्ट्रपति चुनाव हुए और जनता ने अपना शासक चुना।

इंडोनेशिया का संबंध प्राचीन भारत से रहा है। यहाँ आज भी त्योहारों में भारतीयता की झलक मिलती है। यहाँ के प्राचीन हिन्दू मंदिर भी इस बात की पूष्टि करते हैं। इंडोनेशिया के बाली द्वीप पर हिन्दुओं के कई प्राचीन मंदिर हैं, जहाँ एक गुफा मंदिर भी है। इस गुफा मंदिर को 'गोवा गजह गुफा' और 'एलीफेंटा की गुफा' कहा जाता है। 19 अक्टूबर 1995 को इसे विश्व धरोहरों में शामिल किया गया। यह गुफा भगवान शंकर को समर्पित है। इस गुफा में तीन शिवलिंग बने हैं। विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर बोरोबुदुर भी इंडोनेशिया के जावा द्वीप पर स्थित है। विश्व का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर प्रम्बानन मंदिर भी यहीं स्थित है। रामायण और महाभारत जैसे महान भारतीय महाकाव्यों की कहानियाँ इंडोनेशियाई लोक कला और नाटकों का स्रोत है।

इंडोनेशिया और इसके साथ अन्य द्वीप देशों का नाम भारत के पुराणों में दीपांतर भारत अर्थात् सागर पार भारत है। यूरोप के लेखकों ने 150 वर्ष पूर्व इसे इंडोनेशिया (इंद = भारत+नेसोस =द्वीप के लिए) दिया और यह धीरे–धीरे लोकप्रिय हो गया। पहला स्थानिय 'की हजर देवान्तर' ने अपने राष्ट्र के लिए इंडोनेशिया (इण्डोनेशिया) नाम का प्रयोग किया। इंडोनेशिया की प्राचीन भाषा कावी में लिखा हुआ– 'भिन्नेक तुग्गल इक' (भिन्नता में एकता) देश का आदर्श वाक्य है। अभी भी दीपांतर (दीपान्तर) नाम इंडोनेशिया अथवा जावा भाषा के शब्द नुसान्तर में प्रचलित है। इस शब्द का अर्थ लोग बृहद इंडोनेशिया समझते हैं।

इंडोनेशिया की अर्थव्यवस्था भारत की अर्थव्यवस्था के जैसी ही मिश्रित है, जिसमें निजी एवं सरकारी दोनों क्षेत्रों की भूमिका है। इंडोनेशिया दक्षिण–पूर्वी एशिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और जी–20 अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। इंडोनेशिया विश्व की 8वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और संभवतः 2050 तक सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था एवं महाशक्ति बन जाएगा।

भारत और इंडोनेशिया ने दो सहस्राब्दियों से घनिष्ठ सांस्कृतिक और वाणिज्यिक संपर्क साझा किए है। स्वतंत्रता के लिए हमारे संबंधित संघर्षों के दौरान, जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति सुकर्णों के नेतृत्व में भारत और इंडोनेशिया के राष्ट्रीय नेतृत्व ने एशियाई और अफ्रीकी स्वतंत्रता के कारणों का समर्थन करने में घनिष्ठ सहयोग किया और बाद में दोनों के स्वतंत्र होने के बाद प्रधानमंत्री नेहरू और राष्ट्रपति ने मिलकर 1955 में 'बांडुंग सम्मेलन' में एफ्रो–एशियाई और गुटनिरपेक्ष आंदोलनों की नींव रखी। वर्ष 1991 में भारत द्वारा 'पूर्व की ओर देखो नीति (Look East Policy) को अपनाने के बाद दोनों देशों के बीच राजनीतिक, सुरक्षा, रक्षा, वाणिज्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में द्विपक्षीय संबंधों में काफी तेजी से प्रगति हुई है। वर्तमान सरकार पूर्व एशिया के साथ संबंधों को और भी मजबूत करना चाहती है। वर्तमान सरकार 'पूरब में काम करो' के रूप में अपनी नीति के लिए उपयुक्त शीर्षक रखा है।

वर्ष 2005 में इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुसिलो बंबांग युधोयोनो की राजकीय यात्रा के दौरान 'राजनीतिक साझेदारी की स्थापना पर संयुक्त घोषणा' पर दोनों देशों द्वारा हस्ताक्षर किए गए। राष्ट्रपति योधोयोनो ने जनवरी 2011 में मुख्य अतिथि के रूप में भारत के गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारत का दौरा किया। परस्पर विधिक सहायता संधि, प्रत्यर्पण संधि, तेल एवं गैस के क्षेत्र में सहयोग संबंधी समझौता, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सहयोग संबंधी समझौता, व्यापार मंत्रियों का द्विवार्षिक सम्मेलन आयोजित करने संबंधी समझौता, परस्पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आदान–प्रदान आदि ऐसे 16 अंतः सरकारी समझौते पर इस यात्रा के दौरान दोनों देशों द्वारा हस्ताक्षर किए गए। इसके अलावा, इस यात्रा के दौरान एक प्रख्यात व्यक्ति समूह स्थापित करने तथा रक्षा, गृह, तेल एवं गैस, विद्युत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कोयला, नवीकरणीय ऊर्जा, स्वास्थ्य एवं शिक्षा मंत्रियों की बैठकें, पर्यटन आदि नियमित रूप से आयोजित करने का निर्णय लिया गया। भारत और इंडोनेशिया एक द्विपक्षीय व्यापक आर्थिक सहयोग जैसे समझौता के लिए बातचीत शुरू करने पर सहमत हुए हैं। वैकल्पिक रूप से दोनों पक्ष एक–दूसरे के देश में व्यापार एवं निवेश मंच, ऊर्जा मंच आदि का आयोजन करने पर भी सहत हुए हैं।

वर्ष 2005 में भारत इंडोनेशिया सामरिक भागीदार बनने के लिए सहमत हुए। सामरिक, सुरक्षा और व्यापार के लिहाज से 18,000 से अधिक द्वीपों वाला इंडोनेशियाई दीपसमूह भारत के लिए महत्वपूर्ण है। इंडोनेशिया के माध्यम से चलने वाले चार महत्वपूर्ण जलडमरूमध्य दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भारत के बहुत से संपर्क को

नियंत्रित करते हैं। व्यापार और व्यापार की दृष्टि से, इंडोनेशिया आसियान में भारत का दूसरा बड़ा व्यापारिक भागीदार है और द्विपक्षीय व्यापार 20 बिलियन डॉलर का है। दोनों देशों के गौरवशाली अतीत और साझा सांस्कृतिक संबंध भविष्य में सहयोग के लिए एक मजबूत मंच तैयार करते हैं।

वर्ष 2013 में भारत और इंडोनेशिया ने लोकतंत्र, बहुलवाद और विविधता तथा मजबूत अर्थ व्यवस्थाओं के मूल्यों के प्रति साझा प्रतिबद्धता के आधार पर भारत–इंडोनेशिया रणनीतिक साझेदारी को मजबूत करने के लिए पाँच पक्षों के माध्यम से संयुक्त रूप से अपनी क्षमता का आकलन किया। प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने 10–12 अक्टूबर, 2013 को इंडोनेशिया का दौरा किया। इस दौरे के दौरान स्वापक (नींद लाने वाली) दवाओं के अवैध व्यापार के विरूद्ध सहयोग, आपदा प्रबंधन में सहयोग तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध सहयोग जैसे मुद्दों पर एम.ओ.यू पर हस्ताक्षर किए गए। दोनों पक्ष के नेताओं रणनीतिक आबंध, व्यापक आर्थिक भागीदारी, रक्षा तथा सुरक्षा सहयोग, सांस्कृतिक तथा दोनों देशों की जनता के बीच संबंध एवं आम चुनौतियों का सामना करने हेतु सहयोग के रूप में रणनीतिक भागीदारी को सुदृढ़ करने के लिए पाँच स्तरीय पक्षों को अपनाने पर सहमति व्यक्त की है।

25वें एशियन शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इंडोनेशिया के राष्ट्रपति जोकोविडोडो से 13, नवम्बर 2014 को पीटाँव में मुलाकात की। दोनों नेताओं ने दोनों देशों में व्यापार एवं निवेश बढ़ाने के बारे में सहमति की।

भारत और इंडोनेशिया के रक्षा मंत्रियों के बीच संवाद के दौरान भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने किया, जबकि इंडोनेशियाई प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व वहाँ के रक्षा मंत्री जनरल प्रबोवो सुविआंतो (General Prabowo Subianto) ने किया। दोनों रक्षा मंत्रियों के बीच रक्षा एवं सैन्य संबंधों के विस्तार पर चर्चा के दौरान रक्षा उद्योगों एवं रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग संभावित क्षेत्रों की पहचान की गई। ध्यात्व्य है कि नवम्बर 2018 में आयोजित इंडोनेशियाई रक्षा एक्सपो (Indonesian Defence Expo) में भारतीय रक्षा उद्योग ने भी भाग लिया था। इसके अतिरिक्त भारत और इंडोनेशिया के बीच 'गरूड़ शक्ति' नाम से एक सयुक्त सैन्य अभ्यास का आयोजन भी किया जाता है।

भारतीय नौसेना की अंडमान और निकोबार कमांड (एएनसी) इकाई तथा इंडोनेशिया की नौसेना के बीच 38वीं भारत–इंडोनेशिया समन्वित गश्त (आइएनडी–आइएनडीओ कॉर्पेट) 13 से 24 जून 2022 तक अंडमान सागर और मलक्का जलडमरूमध्य में आयोजित की जा रही है।

38वीं कॉर्पेट दोनों देशों के बीच कोविड महामारी के बाद पहली समन्वित गश्त (कॉर्पेट) है। इसमें 13 से 15 जून, 2022 तक पोर्ट ब्लेयर ने इंडोनेशिया नौसेना की इकाइयों द्वारा एएनसी की यात्रा और उसके बाद अंडमान सागर में एक समुद्री चरण तथा 23 से 24 जून, 2022 तक सबांग (इंडोनेशिया) में भारतीय नौसेना इकाइयों की यात्रा शामिल है। भारत सरकार के सागर (क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा एवं विकास) दृष्टिकोण के हिस्से के रूप में मुख्यालय एएनसी के तत्वावधान में नौसेना इकाई क्षेत्रीय समुद्री सुरक्षा को बढ़ाने की दिशा में संबंधित विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों (ईईजेड) के साथ अंडमान सागर के अन्य तटीय देशों के साथ समन्वित गश्त करती है।

भारत और इंडोनेशिया ने विशेष रूप से घनिष्ट संबंधों का लाभ उठाया है, जिसमें विभिन्न गतिविधियाँ

एवं बातचीत के व्यापक स्पेक्ट्रम शामिल हैं। दोनों नौसेनाएँ 2002 से अपनी अंतराष्ट्रीय समुद्री सीमा रेखा (आईएमबीएल) के साथ–साथ कॉर्पेट का संचालन कर रही हैं। इससे दोनों नौसेनाओं के बीच आपसी समझ व अंतःक्रियाशीलता बढ़ाने में सहायता मिली हैं और अवैध अनरिपोर्टेड अनरेगुलेटेड (आईयूयू) फिशिंग, मादक पदार्थों की तस्करी, समुद्री आतंकवाद, सशस्त्र लूट तथा समुद्री डकैती आदि को रोकने और इनका दमन करने के उपायों की सुविधा प्रदान की है। आइएनडी–आइएनडीओ कॉर्पेट अंडमान सागर और मलक्का जलडमरूमध्य में मित्रता के मजबूत बंधन में योगदान देता है।

भारत और इंडोनेशिया का घनिष्ठ सांस्कृतिक एवं वाणिज्यिक संबंधों का दो सदियों से भी अधिक का इतिहास प्रस्तुत है। साझा संस्कृति, औपनिवेशिक इतिहास और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक संप्रभुता, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्वतंत्र विदेश नीति के लक्ष्यों ने दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों पर काफी गहरा प्रभाव डाला है।

व्यापारिक दृष्टिकोण से आसियान (ASEAN) क्षेत्र में इंडोनेशिया भारत का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार देश है। दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार वित्तीय वर्ष 2005–06 में 4.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वित्तीय वर्ष 2018–19 में 21 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया है, हालाँकि बीते एक वर्ष में इस द्विपक्षीय व्यापार में कुछ कमी देखने को मिली है। ध्यात्व्य है कि भारत इंडोनेशिया के कोयले और कच्चे तेल का दूसरा सबसे बड़ा खरीदार है।

ऐतिहासिक रूप से ही भारत और इंडोनेशिया के बीच एक सक्रिय सांस्कृतिक आदान–प्रदान होता रहा है। इंडोनेशिया में भारत के दूतावास द्वारा जवारहलाल नेहरू भारतीय सांस्कृति केन्द्र (JNICC) का संचालन किया जाता है, जो नियमित तौर पर भारतीय शास्त्रीय संगीत, भारतीय शास्त्रीय नृत्य (कथक और भरतनाट्यम) योग और हिन्दी एवं तमिल भाषा से संबंधित कक्षाओं का आयोजन करता है। वर्ष 1989 में अपनी स्थापना के बाद से ही जवाहरलाल नेहरू भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र (JNICC) इंडोनेशिया में भारतीय कला एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर रहा है।

भारत और इंडोनेशिया की सांस्कृतिक संबंधों को भी देखा जाए तो, भारत भी इंडोनेशियाई संस्कृति से, विशेषकर हिंदू बाली संस्कृति निकटता से संबंधित है। 1927 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी जावा और बाली की अपनी यात्रा के दौरान, बाली से अधिक प्रभावित हुए और कहा– ''मैं जहाँ भी द्वीप पर जाता हूँ, मैं भगवान को देखता हूँ।'' साल 1950 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बाली को 'दुनिया का सुबह' बताया।

प्राचीन काल से ही भारतीयों द्वारा इंडोनेशिया का दौरा किया जाता रहा है। प्राचीन भारतीयों ने हिन्दू धर्म, संस्कृत और ब्राह्मी लिपि सहित भारतीय संस्कृति के कई अन्य पक्षों को फैलाया है। इंडोनेशिया की भाषाओं में संस्कृत ऋणपत्रों की काफी बड़ी संख्या है, जिस पर भारत का प्रभाव झलकता है। भारत से पल्लव लिपि और संस्कृत भाषा को अपनाने के बाद इंडोनेशिया के इतिहास का नया दौर प्रारंभ हुआ। इसका प्रमाण वहाँ के प्राचीनतम राजवंशों के शिलालेखों में मिलता है। यहाँ कुताई, तुगु और तरूमनगर का युपा और कलिंग (ओडिशा) के ऐतिहासिक रिकार्ड से पता चलता है।

निष्कर्ष : भारत और इंडोनेशिया का सम्पूर्ण अध्ययन यह बताता है कि यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, खान–पान, रहन–सहन, देवी–देवताओं से संबंध रीती–रीवाज आदि आपसी समझ को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर

दर्शा रहा है। जहाँ धार्मिक पक्ष के रूप में रामायण और महाभारत दोनों ही महाकाव्य आज तक इंडोनेशियाई लोगों के बीच लोकप्रिय हैं, वहीं इंडोनेशिया की संस्कृति को भारतीय संस्कृति और परम्पराओं से जोड़कर देखते हैं। यहाँ की भाषा तथा लिपि भी भारत से प्रभावित है।

सुमन कुमारी
टेलीफोन/मोबाईल नं0–9572011701
ई–मेल– sumansharmakumari635@gmail.com
पिन कोड के साथ पता (हिन्दी+इंग्लिष):– मो0– गोपालगंज (टाइगर फिल्ड के समीप),
पोस्ट ऑफिस+थाना–सासाराम, जिला–रोहतास (बिहार)–821115

Moh- Gopalganj (Near Tiger Field), P.O.+P.S.- Sasaram, Disst.- Rohtas
(Bihar)-821115

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 95-98

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन कविताओं में मानवीय संवेदना

डॉ. सुप्रिया ई. सहायक प्राध्यापिका
हिंदी विभाग, फाटिमा कॉलेज, मदुरै

दुनिया की सबसे पवित्र और आदिम कला है कविता। कहानी और उपन्यास की तुलना में कविता आज भी कम लोकप्रिय साहित्य विधा है। कविता केवल रसात्मक अभिव्यक्ति नहीं है यानि कविता वह है जो कानों के माध्यम से हृदय को आंदोलित करें या प्रभावित करें। कविता द्वारा कही गई बात का असर तेज होता है। कविता मर्मस्पर्शी हो तो सदा के लिए अमर हो जाती है। कोई भी मनुष्य दूसरों के अनुभवों को अपना बनाने के लिए अग्रसर होता है तो समाज में कलाकार और श्रोता नाम के दो वर्ग उत्पन्न होता है ।

समकालीन कविता की निश्चित परिभाषा देना संभव नहीं है। यह एक जिंदा शब्द है। समकालीन कविता आधुनिक युग की एक विशिष्ट काव्य धारा है किंतु यह आधुनिकता से भिन्न है। एक काव्य धारा के रूप में समकालीन कविता की प्रतिष्ठा आधुनिक युग की देन है। नई पीढ़ी के ऊर्जा और तलाश के कारण समकालीन कविता का स्वरूप अत्यंत व्यापक है।

"आदि से अंत तक, शून्य से अंत तक
सत्य से असत्य तक, धैर्य से अधैर्य तक
भीड से तन्हाई तक, शांति से युद्ध तक
सिद्धार्थ से बुद्ध तक, जड़ से चेतना तक
स्त्री से पुरुष तक, अत्कर्ष से अपकर्ष तक
शील से अमर्ष तक, हर्ष से विषाद तक
श्याम से खेत तक, एकल से समवेत तक
मेरा ही राज है जो कल था, वही आज है।"

सामाजिक यथार्थ का चित्रण समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता है । "निरंतर परंपरा को कोई अपेक्षा जरूरी न हो तो फिर कबीर को समकालीन कविता का प्रवर्तक माना जा सकता है क्यों कि विचार–बोध, काव्य–बोध और स्वभाव–बोध की दृष्टि से अधिकांश समकालीन कवि अपने किसी पूर्वज से प्रेरित होते रहे हैं तो कबीर से ही।" आज समकालीन कविता सामाजिक यथार्थ के साथ अनेक अनछुए बिंदुओं का उल्लेख करती है। समकालीन कविता में बदलते जीवन मूल्यों को चित्रित करते है।

आज की रचनाकारों द्वारा पारिवारिक संबंधों तथा अन्य वातावरण को लेकर विभिन्न प्रकार की चिंतन और चेतना प्रधान कविताएँ लिखी जा रही है। समकालीन कविता पैंतीस वर्षों से लगातार चली आ रही है। आज यह 21वीं शदाब्दी के प्रथम दशक में प्रवेश कर चुकी है और आगे बढ़ती रहेगी ।

"अरबों पैरों से लग–लगाकर
फट रही इस पृथ्वी की बिवाइयों में
भर रहा हूँ मोम–सा विश्वास
कि देख सके यह दुनियाँ
सन् बीस सौ पच्चास ।"

(शरद रंजनशरद – सब बीस सौ पचास से)

सामाजिक यथार्थ समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता है। समकालीन कवि अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति सतर्क है। समकालीन कविता द्वारा अनेक कवियों ने दलित को लेकर अपना विचार प्रकट की है। 'नागार्जुन' की 'हरिजन गाथा' कविता आठवें दशक की रचना है। कवि ने अपनी कविताओं द्वारा दलित के प्रति सभी अंधविश्वासों को छिन्न भिन्न कर दिया। समकालीन कवियों ने नवें दशक से लेकर आज तक के समकालीन वातावरण को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाओं का प्रस्तुतीकरण किया है। समकालीन कविता में राष्ट्रीय भाव बोध का स्वरूप अधिक नहीं है क्यों कि समकालीन कवि बिडंबनाओं, विषमताओं और अंतर्विरोधों में फँस गया है लेकिन कुछ पक्षों का स्पर्श समकालीन कवियों ने किया है । धर्म और आध्यात्म का प्रभाव समकालीन कविता में मिलता है । आदर्शपरक और यथार्थपरक प्रकृति चित्रण समकालीन कविता में देख सकते है।

"रात में इसके नीचे
सूखी घास जैसी गरमाहट
नीड़, पक्षियों की साँस
उनके डैनों और बीट की गंध
काली मिट्टी जैसी धाया।"

(आलोक धन्वा – आम का पेड़)

संवेदनाएँ मानव जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग है। साहित्यकार अपने जीवन, समाज आदि से जो अनुभव प्राप्त करते हैं उसे अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों तक पहुँचाते है। संवेदनशीलता के बिना रचनाकार लोगों की भावनाओं के साथ तादात्म्य न कर सकता है। समकालीन हिंदी रचनाकारों दलित संवेदना, स्त्री संवेदना, भयपरक संवेदना आदि सभी संवेदनाओं के बारे में अपनी कविताओं में व्यक्त किया है।

"मुँह में घुटी चीख
दाँतों में भिंची जीभ
हांफती हवस
ठंडी देह
गर्म साँस
मृत्यु के साथ
बलात्कार"

समकालीन रचनाकारों ने संवेदना के साथ ही संवेदना के स्तरों के ऊपर भी अपना विचार व्यक्त किया है। मानवीय संवेदना के स्वरूप, कारण आदि विषयों पर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मनुष्य चाहे कुछ भी बने

लेकिन सबसे पहले उसे मानव बनना चाहिए। आज के युग में मानवीय संवेदनाओं की मृत्यु हो रही है। इसलिए समकालीन रचनाकारों ने संवेदनाओं को अपने काव्य की विषय बनाकर मनुष्य में उन भावों को जागृत करने का कार्य किया है। संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए जिन कविताओं की सृष्टि की हैं उसमे संवेदनाओं के साथ समाज का वास्तविक चित्रण प्रतिफलित है। समकालीन कवि यह संकेत दिया कि प्रकृति और पर्यावरण का गहरा संबंध है।

"हरा पता कभी मत तोड़ना
और अगर तोड़ना तो ऐसे
कि पेड़ को जरा भी
न हो पीड़ा ।"

आज की युवा रचनाकार वादों और आंदोलनों को ऊपर उठाकर सोचता है और कोई प्रति बंधन में नहीं है। जो कुछ भी अस्वीकृत है उन सबको समकालीन कवियों ने स्वीकार किया है। समकालीन कवियों का स्वरूप, उसकी अर्थगत चेतना एवं प्रवृत्तियाँ इस बात का प्रमाण है कि उस कविता में यथार्थ की असंगतियाँ का व्यंग्य चित्रण है ।

"श्मशान का मंजर
सहमी थीं
लोगों की आँखें
दहशत अब भी ना जा सकी थी
जिंदगी की
मुर्दे जिस्म से
ऋतु गंध की जगह
बारूदी बू
मकई की रोटी की जगह
सिंकता हैं पेट रोसई में
नदी में पानी नहीं
खून बहता है"

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चंद्रा सदायत – नयी कविता की काव्यानुभूति – विकास पब्लिकेशन ।
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – आधुनिक हिंदी कविता – लोकभारती प्रकाशन ।
3. ए. अरविंदाक्षन – कविता का यथार्थ – जवाहर पुस्तकालय ।
4. डॉ. एस. पद्मप्रिया – आधुनिक कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण के संदर्भ में – मिलिंद प्रकाशन ।
5. पी. रवी – समकालीन कविता के आयाम – लोकभारती प्रकाशन ।

6. अशोक सिन्ह – समकालीन कविता : एक विश्लेषण – लोकभारती प्रकाशन ।
7. शोभा खेमानी – आधुनिक हिंदी कविता में यथार्थ बोध – राजीव प्रकाशन ।
8. रमणिका गुप्ता – प्रतिनिधि कविताएँ – अक्षर शिल्पी प्रकाशन ।
9. डॉ. बाबु जोसेफ – समकालीन कविता और कुमार अंबुज ।
10. जयशंकर प्रसाद – कामायनी – सरस्वती प्रिंटिग प्रेस ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 99-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में संबंध

डॉ० श्वेता शरण, अतिथि सहायक प्राध्यापक
विभाग समाजशास्त् आर.एम कॉलेज सहरसा बी.एन.एम.यू मधेपुरा बिहार (भारत) 852201
swetasharan2020@gmail.com Mob. No. : 6205007483

भारतीय इतिहास में सभ्यता एवं संस्कृत का संबंध काफी पुराना है सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध ऐसा है कि लगता है दोनों को एक की समझ लिया जाता है जबकि ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। ठीक वैसे ही है जैसे हम एक फूल को सभ्यता और उसकी सुगंध को हम संस्कृति कह सकते हैं सभ्यता से किसी संस्कृति की बाहरी अवस्था का बोध होता है जबकि संस्कृति काफी विस्तृत होती है तो सभ्यता कठोर स्थिरता तथा भौतिक पक्ष प्रधान होता है। जबकि संस्कृति में वैचारिक का संबंध पक्ष प्रबल होता है। हम यह देखते हैं कि अगर सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। सच में अगर शरीर हो उसमें आत्मा ना हो तो शरीर किस काम का है। और अगर आत्मा है तो उसे भी शरीर चाहिए होता है। दोनों का संबंध काफी महत्वपूर्ण है। एक के बिना दूसरा का कोई अस्तित्व ही नहीं है। सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध भी कुछ इसी तरह का है। भारतीय इतिहास में सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध हमें प्राचीन काल से लेकर अभी तक देखने को मिलता है। और यह एक प्रक्रिया है जो निरंतर चलती रहेगी जब तक भारतीय देश है समाज है तब तक यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी। तथा यह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को दर्शाती रहेगी।

भारतीय इतिहास में सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध काफी पुराना है यह एक दूसरे के बिना संभव नहीं है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध का बखान सभी देश विदेश में किया जाता है। भारतीय शिक्षा पद्धति विश्व के पटल पर अवस्थित एवं विराज मय था। प्राचीन काल में भारत की शिक्षा पद्धति इतनी मजबूत थी कि देश–विदेश से लोग यहां शिक्षा ग्रहण करने आते थे। भारत के नालंदा में नालंदा विश्वविद्यालय को विश्व में कौन नहीं जानता है। यहां देश–विदेश से शिक्षा ग्रहण करने लोग आते थे भारत का इतिहास काफी प्राचीन है। भारत का चर्चा विश्व के पटल पर होता है। भारत एक समय में सोने का चिड़िया कहलाता था। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध प्राचीन काल से लेकर अब तक हम लोगों को देखने को मिलता है। जिसमें की यहां का सभ्यता एवं संस्कृति की कई आक्रमणकारियों ने ध्वस्त किया है। इसके बावजूद भी भारतीय इतिहास में ही नहीं बल्कि विश्व के इतिहास में भारत का सभ्यता एवं संस्कृत का गुणगान, बखान आज भी कम नहीं हुआ। भारत विश्व गुरु बनने की ओर अग्रसर है। यह हमें कहीं ना कहीं यह दर्शाता है एवं साबित करती है कि इतने आक्रमणकारियों एवं अंग्रेज के 200 साल शासन करने के बाद ही भारत आज भी अपना सभ्यता एवं संस्कृति का लोहा देश विदेश में मनवा रहा है। अभी कुछ साल से सारा विश्व करोना से तबाह हो गया सभी दृष्टिकोण

से लेकिन भारत की जो सभ्यता एवं संस्कृति थी वह इस कठिन परिस्थिति में भी लोगों की दृढ़ इच्छा शक्ति कायम रहे, क्योंकि भारत गांव का देश है इस कारण आज भी लोग यहां कृषि पर निर्भर हैं। जिससे भारत के लोग ज्यादातर किसान मजदूर होते हैं जिससे यहां के लोग मजबूत शरीर अरमान दोनों से मजबूत होते हैं यहां का खानपान काफी महत्वपूर्ण है जिससे लोग अपने अपने गांव वापस आकर खेती करके अपना जीवन यापन करते थे जबकि सारा विश्व में त्राहिमाम मचा था। वहीं भारतीय सभ्यता संस्कृति का इस समय विश्व लोहा मान रहा था लोग भारतीय खानपान योग, ध्यान, साफ सफाई पर विशेष ध्यान दे रहे थे जो कि भारत के सभ्यता एवं संस्कृति की देन थी। सभी देश इसका अनुकरण कर रहे थे आज भी कर रहे हैं। विदेश में योगा आश्रम खुला है। भारत के लोग घर को मंदिर पुराने समय से ही मानते हैं इस करोना ने पुनः लोगों को वापस भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की ओर लाया है। घर के अंदर चप्पल जूता नहीं ले जाना बाहर खोलना, हाथ पैर धो कर घर के अंदर जाना, तुलसी का पौधा हर आंगन में होना जिससे वातावरण शुद्ध होता है। ओषधि का काम करता है भारत रसोई में मसाला का बड़ा ही विशेष महत्व है। इस कोरोना कॉल में लोगों ने खुद काढा बनाकर पिया, भारतीय गंगा को पवित्र माना जाता है जब पहाड़ से होकर जब गुजरती है तो जड़ी बूटी को लेकर आती है और गंगा का पानी भी औषधि का काम करती है। भारत के लोग हाथ जोड़कर नमस्ते करते हैं इस करोना काल में भारतीय संस्कृति का बड़ा ही बखान हुआ है खुद ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पेपर में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का चर्चा की है लोगों ने इसे खुद सराहा है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का बखान जितना भी करे उतना कम होगा।

सभ्यता का संबंध जीवन यापन या सुख सुविधा की बाहरी से है जबकि संस्कृति का संबंध आंतरिक वस्तुओं से है।"

सभ्यता की माप की जा सकती है किंतु संस्कृति की माप नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए ऐसा बता देना अधिक आसान है कि साइकिल की अपेक्षा मोटर गाड़ी अधिक उपयोगी है किंतु प्रमाण प्रस्तुत करना कठिन है कि पश्चिमी संस्कृति की उपेक्षा भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ है। इसके लिए कोई भी मापदंड नहीं है। सभ्यता की उत्पत्ति अल्पकाल में होती है जबकि संस्कृति उन्नति विस्तृत कालीन सभ्यता की परिणति है। संस्कृति का विकास तीव्र गति से होता है किंतु संस्कृति का प्रसार धीरे–धीरे लेकिन लगातार होता है किंतु सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है। दो आविष्कार में प्रतियोगिता होती है किंतु अध्यात्मिकता में कोई प्रतियोगिता नहीं होती है। सभ्यता साधन है जबकि संस्कृति साध्य है। शब्द का अर्थ है अंतिम लक्ष्य से है। जिसमें आसीन संतुष्टि का अनुभव होता है और इस असीम संतुष्टि की प्राप्ति के लिए जो विधि अपनाई जाती है उसे साधन कहते हैद्य

संस्कृति का अर्थ :– संस्कृति का अर्थ – संस्कृति का अर्थ सामान्यतया लोग सुसंस्कृत होने से लगाते हैं इसके अंतर्गत मधुर भाषा अच्छा पहनावा शालीन व्यवहार प्रतिमान आदि को सम्मिलित किया जाता है लेकिन यह संस्कृति के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण नहीं है कारण यह है कि जंगलों में रहने वाले हुए जनजातियां जो की अर्धनग्न अवस्था में है जंगली जानवरों पर आश्रित हैं और शिकार कर जीवन निर्वाह करते हैं वे भी सार्थक संस्कृति से संपन्न है। कोई भी संस्कृति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से हीन अथवा नहीं होती है प्रत्येक संस्कृति में अद्वितीय व विशिष्ट है अतः उसकी तुलना उच्च निम्न के सोपान में रखकर नहीं की जा सकती।

मानव संस्कृति के विभिन्न आयाम बचपन से सीखे जाते हैं बच्चे वह सब सीखते हैं जिसे समाज के सभी सदस्य सीखने योग्य मानते हैं इस मायने में बालक समाज के सामान्य सहभागिता युक्त अनुभव को आत्मसात

करता है अतः हम शुरू से यह सीखते हैं कि कब खाना है कौन से प्रकार की वस्तु है खानी है कि क्या प्रतिमान है आधी यह सब सीख कर व्यक्ति समाजिक कृत प्राणी बनता है।

बरूम सेल्जनिक के अनुसार समाज विज्ञानों में संस्कृति शब्द का अर्थ मनुष्य की समाजिक विरासत से लिया जाता है जिसमें सभी प्रकार का ज्ञान विश्वास तथा प्रज्ञा आती है जिसे एक व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है जो व्यक्ति मानव संस्कृति कई आपस बचपन से सीखे जाते हैं बच्चे वह सब सीखते हैं जिसे समाज के सभी सहज सीखने योग्य मानते हैं इस मायने में बालक समाज के सामान सा विभागीय आयुक्त अनुभव को आत्मसात करता है आता हम शुरू से यह सीखते हैं कि कब खाना है कौन से प्रकार की वस्तुएं खानी है यह सब सीखकर व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है।

परिभाषा :– गिलिन व गिलिन के अनुसार :– सभ्यता एवं संस्कृति का अधिक जटिल तथा विकसित रूप है ग्रीन ने सभ्यता वह संस्कृति के मध्य अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक संस्कृति तब ही सभ्यता बनती है जबकि उसके पास एक लिखित भाषा दर्शन विशेषण युक्त तथा श्रम विभाजन एक जटिल विधि और राजनीतिक प्रणाली हो।

जिस्बर्ट के अनुसार सभ्यता बताती है कि हमारे पास क्या है जबकि संस्कृति यह बती है कि हम क्या हैं सभ्यता में सुधार की जा सकती है किंतु संस्कृति में नहीं जब की सभ्यता साधारण व्यक्ति भी श्रेष्ठ अविष्कार में सुधार कर सकता है किंतु प्रतिष्ठित कवि और कलाकार की कविता वह कलाकृति में साधारण व्यक्ति सुधार नहीं कर सकता है जब तक कि उस व्यक्ति को उसका ज्ञान नहीं होगा वह व्यक्ति नहीं कर जबकि सभ्यता में गहराई का अभाव होता है किंतु संस्कृत की गहराई तक सब व्यक्ति नहीं पहुंच सकता । काण्ट––––– काण्ट ने सभ्यता संस्कृति को अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि सभ्यता वह व्यवहार की वस्तु है परंतु संस्कृति नैतिक की आवश्यकता होती है तथा यह आंतरिक व्यवहार की वस्तु है इस प्रकार परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन किया गया है।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में मिथिलांचल सभ्यता एवं संस्कृति का महत्व मिथिलांचल संस्कृति सोहर गीत

राम के जनम चौत शुभ दिनवां हो राम
राम के जनम।।
चैत्र शुक्ल पक्ष दिन तिथि रामनवमी
जनम ले राम चारों ललनवा हो राम,
किनका से जनमल राम ललनवॅ
किन का से भरत ललनवा हो राम,
राम के जनम।।
कौशल्या से जनमल राम ललनवां,
कैकयी से भारत ललनवां राम हो राम,
राम के जनम।।
किनका से जनमल

लखन शत्रुध्नवां,

आनंद जाते तीनों भुवनवां हो राम राम के जनम ।।

सोहर गीतों में सु संबंध का सबसे बड़ा उदाहरण है पूरे समाज की स्त्रियां चाहे वह किसी भी जाति या उम्र की हो पुत्र जन्म की इस खुशी के अवसर पर एकत्र होती है और सोहर गीत गाकर अपनी खुशी तथा शुभकामना व्यक्त करती है। इस दृष्टि से यहां कोई भेदभाव नहीं है ना जातिगत।

गागरिन प्रायः अछूत जाति की होती है पर वह सब उनके घरों में भी इस अवसर पर ससम्मान बुलाई जाती है। गीत गाने वाली औरतों की हर जाति की होती है परंतु उनके साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता है इस तरह सामाजिक दृष्टि से एक आपसी सहयोग एवं अवतार दिखाई पड़ता है इन सोहर गीतों में लोकगीत ग्रामीण महिलाओं के लिए मनोरंजन का एक सशक्त साधन है इन गीतों में पति पत्नी के बीच की छेड़छाड़ मिलो काम था सास ननंद तथा वधू के बीच की कटुता पति के वियोग में पत्नी की छटपटाहट आदि स्थितियों को गाकर खूब आनंद लिया जाता है। सोहर में मनोरंजन के साथ–साथ कल्याण की भावना भी इसमें निहित रहती है प्रथा का अनुपालन भी होता है और धार्मिक विश्वास भी व्यक्त होता है क्योंकि इस संसार में मनुष्य का कोई समूह धर्म के बिना नहीं रह सकता चाहे कितना ही जंगली क्यों ना ।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष – इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संबंध काफी पुराना है एक के बिना दूसरा संभव नहीं हो सकता है। यह एक दूसरे की आत्मा एवं शरीर की तरह बताया गया है। विश्व के पटल पर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का बखान हमें देखने को मिलता है। प्राचीन काल से अब तक हमें यह देखने को मिलता है यहां की सभ्यता संस्कृति सभी समय में विश्व के सभी देश ने गुणगान किया है। खासकर के हाल ही में करोना काल में भारतीय सभ्यता संस्कृति की लोहा माना है, योग, ध्यान, खान –पान, पहनावा घर को मंदिर मानना आंगन में तुलसी का पौधा लगाना रसोई में औषधि का ज्ञान होना किस तरह से मसाला चाय करोना काल में लोगों को फायदा पहुंचाया है तुलसी का पत्ता खाने का फायदा गंगाजल पवित्र होता है, स्वास्थ्य के लिए फायदा है पेड़ पौधा में ऑक्सीजन होती है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का काफी महत्व है, भारत में कई आक्रमणकारी आक्रमण किया और गुलाम बनाया इसके बावजूद आज तक भारतीय सभ्यता एवं संस्कृत का संबंध हमें देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची :–

1. सुधाकर गोस्वामी पेज नंबर –337
2. ग्रामीण समाज कुमार सिंह तिलवाड़ा पेज नंबर– 181
3. कोसी संगीत घराना डॉगी श्रीधर कुमार
4. समाज शास्त्र विवेचन डॉक्टर नरेंद्र सिंधी

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 103-109

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इंडोनेशिया में भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति के बढ़ते विकास में समस्या और समाधान (भौगोलिक एक विश्लेषण)

डॉ. वेदप्रकाश, सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष – भूगोल
किसान (पी० जी०) कॉलेज सिम्भावली जनपद हापुड़ उत्तर प्रदेश –245207

सारांश :–

एशिया महादीप में स्थित भारत और इंडोनेशिया का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा और इंडिया का चौथा स्थान है। अगर हिंदू आबादी की दृष्टि से देखा जाए, तो भारत का प्रथम और इंडोनेशिया का तृतीय स्थान है। भारत और इंडोनेशिया की दूरी 8700 किलोमीटर है, लेकिन दोनों देशों की शिक्षा और संस्कृति में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। आबादी के लिहाज से भले ही इण्डोनेशिया दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है, लेकिन यहां के लोगों की जीवन शैली पर हिंदू संस्कृति का बहुत अधिक प्रभाव है। धर्म यहां इस्लाम और संस्कृति रामायण है। शिक्षा और संस्कृति हमारा जीवन है, जो हमें जीना सिखाती है। शिक्षा एवं संस्कृति सभी के जीवन में सकारात्मक विचारों को ला कर नकारात्मक विचारों को हटाती है। शिक्षा एवं संस्कृति विकास का वह क्रम है, जिससे व्यक्ति अपने को धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण में खुद के अनुकूल बना लेता है। जीवन ही वास्तव में शिक्षा एवं संस्कृति है। इण्डोनेशिया मे परिवार को महत्ता दी जाती है। पिता को परिवार के मुखिया के रूप में स्थान दिया जाता है। पारिवारिक कार्यक्रमों में सभी की सहमति होती है। इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति का ही प्रभाव है। विश्व में अनेक संस्कृतियों का विकास हुआ समय के साथ–साथ ये विलीन भी होंगी। ऐसे में देखा जाए तो विश्व की प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ संस्कृति के रूप में भारतीय संस्कृति ने स्वयं को स्थापित किया है। भारत और इंडोनेशिया की साझी संस्कृति पुरुषार्थ, लगन, लक्ष्य तथा परिश्रम के बल पर मानवीय मूल्यों का सृजन करती है। हमारी तरह इंडोनेशिया की संस्कृति में दान देना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। हमारी तरह ही इस देश में भी अयोध्या और लोगों के दिलों में श्री राम बसते हैं। हिंदू त्योहारों तथा ईसाई त्योहारों के साथ ईद भी मनाई जाती है। यहां के लोग बेहतर मनुष्य बनने के उद्देश्य से रामायण पढ़ते हैं। मुस्लिम आबादी वाला देश इंडोनेशिया का राम कथा यानी रामायण का दीवाना है। इस देश में भारत की तरह ही अनेक मंदिर हैं। यहां के मुस्लिम भी भगवान श्री राम और कृष्ण को अपने जीवन का नायक और रामायण–महाभारत को अपने दिल के करीब मानते हैं। इंडोनेशिया की मुख्य भाषा इन्होंनेशायी है, जिसे स्थानीय लोगों की बहासा इंडोनेशिया के रूप में जानते हैं। लेकिन यहां के

मुस्लिम स्थानीय लोग कई जगह अपने बच्चों के नाम संस्कृत भाषा में रखते हैं। इंडोनेशिया के मुस्लिम लोग अपने बच्चों का नाम वह रखते हैं, जो जिस रूप में देखना चाहते हैं। अगर कोई अपने बच्चे को मजबूत देखना चाहता है, तो वह अपने बच्चे का नाम भीम रखता है। हनुमान इंडोनेशिया के सर्वाधिक लोकप्रिय पात्र हैं। इंडोनेशिया को रामायण के मंचन के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर की ख्याति प्राप्त है। इंडोनेशिया की संस्कृति में पशु पक्षियों के प्रति प्रेम अनुराग और आदर का भाव निहित है। इंडोनेशिया की संस्कृति में भारत की तरह त्याग और परोपकार का बड़ा महत्व है। यह विविधता से भरा हुआ देश है। यहां की संस्कृति ने देश को एकता के रूप में बांधा है लेकिन कुछ कट्टरपंथी मुस्लिमों ने इंडोनेशिया की संस्कृति को मोड़ने तोड़ने का काम किया है उन्होंने अपने धर्म के प्रति प्रचार कर आगे बढ़ाने का कार्य किया है लेकिन अब वर्तमान समय में जो हिंदू लोग बाली द्वीप पर रहते हैं उन्हें अपने धर्म के प्रति प्रचार प्रसार कर आगे बढ़ाना होगा। इससे भारत और इंडोनेशिया की शिक्षा और संस्कृति को मजबूती मिलेगी।

इंडोनेशिया की पृष्ठभूमि :–

इंडोनेशिया दुनिया का एक खूबसूरत तथा बहुत बड़ा द्वीप समूह है। इंडोनेशिया नाम लैटिन शब्द इंडस (इंडियन) और ग्रीक शब्द नेसोस (द्वीप) से मिलकर बना है। इंडोनेशिया दक्षिण पूर्वी एशिया में स्थित है, जिसकी राजधानी जकार्ता से (कालीमंतन) नुसंतारा हो गई है। इंडोनेशिया प्रशांत महासागर तथा हिंद महासागर के मध्य में स्थित है। इसका विस्तार 6 डिग्री उत्तरी अक्षांश से लेकर 11 डिग्री दक्षिणी अक्षांश तक है। यह पूर्व से पश्चिम में 5120 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण में 1,760 किलोमीटर की लंबाई में विस्तृत है। इस देश की आकृति को विखंडित आकृति के नाम से संबोधित किया जाता है। इसका क्षेत्रफल 19,19,317 वर्ग किलोमीटर है। इसमें 17,508 द्वीप शामिल है (कुछ लोग इसे 18,000 मानते हैं)। इनमें से केवल 6,044 के ऊपर ही लोग रहते हैं। यहां के पांच मुख्य द्वीपों में सुमात्रा, जावा, कालीमंतन, सुलावेसी, इरियन जाया हैं। बाली द्वीप हिंदू आबादी के लिए प्रसिद्ध है। इंडोनेशिया का मोटो भिन्न का टुग्गल इका जिसका अर्थ है अनेकता में एकता। इस देश की सीमाएं मलेशिया पापुआ न्यू गिनी, तथा पूर्वी तिमोर से लगती है। 2019 की जनगणना के अनुसार यहां की जनसंख्या 27.6 करोड़ है। यह भूमध्य रेखा पर स्थित होने के कारण भूमध्य रेखीय प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है। इण्डोनेशिया रिंग ऑफ फायर के भीतर स्थित है। यहां प्रतिदिन तीन भूकंप आते हैं। इंडोनेशिया को ज्वालामुखी द्वीप व द्वीपों का राजा कहा जाता है। जिसमें लगभग 3,00 ज्वालामुखी है। इंडोनेशिया में कुल तीन समय जोन है। यहां की भाषा इंडोनेशिया तथा मुद्रा इंडोनेशियाई रुपिया है। यह का राष्ट्रीय पक्षी गरुड तथा राष्ट्रीय पुष्प रफ्फलेसिया अर्नोल्डी जिसका वजन 7 किलोग्राम होता है। यह केवल सुमात्रा इंडोनेशिया के द्वीप पर मिलता है। इसकी पंखुड़ियां 5 मीटर लंबी, 1.6 मीटर चौड़ी और 2.5 सेंटीमीटर मोटी होती है। यहां का राष्ट्रीय पशु कोमोडो ड्रैगन दुनिया की सबसे बड़ी छिपकली है जिसकी लंबाई 3 मीटर और चौड़ाई 8 फीट तक होती है। यहां 700 से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं, और जैव विविधता के लिए इंडोनेशिया दूसरे स्थान पर आता है। यहां की सबसे लंबी नदी कापूस इस क्षेत्र में चावल अधिक मात्रा में उगाया जाता है, जो विश्व प्रसिद्ध है। वनों की कटाई की दर सबसे अधिक इंडोनेशिया में ही है, जो जलवायु परिवर्तन को जन्म देगी। इंडोनेशिया में साफ–सुथरी झीलें दलदल युक्त तटीय वृक्षावली तथा धरती के सबसे चमत्कारी वर्षा वन है। यहाँ अनेक प्रकार के जानवर जैसे बाघ, गैंडे जंगलों में घूमते हुए देखे जा सकते हैं ।

शिक्षा और संस्कृति :-

शिक्षा और संस्कृति को हम शब्दों में बयां नहीं कर सकते। शिक्षा एवं संस्कृति हमारा जीवन है, जो हमें जीना सिखाती है। शिक्षा एवं संस्कृति सभी के जीवन में सकारात्मक विचार लाकर नकारात्मक विचारों को हटाती है। शिक्षा एवं संस्कृति का विकास वह क्रम है, जिससे व्यक्ति अपने को धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार से अपने बौद्धिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण में खुद को अनुकूल बना लेता है। जीवन ही वास्तव में शिक्षा एवं संस्कृति है। शिक्षा एवं संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज की दीर्घकाल तक अपनाई गई पद्धतियों का परिणाम होता है, और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य की सभी उपलब्धियां उसकी शिक्षा एवं संस्कृति से प्रेरित मानी जाती है। शिक्षा एवं संस्कृति की सहायता से उसने निरंतर प्रगति की है। और विकास के विभिन्न सोपानों को तय किया है। वह भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों का संप्रेक्षण तथा ज्ञान विज्ञान का विकास एवं अपने चिंतन के परिणामों को, भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित कर सकता है, उसका मस्तिष्क कार्य और कारण के तार्किक आधार को स्थापित कर सकता है। संपूर्ण जीवधारियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसमें शिक्षा एवं संस्कृति का निर्माण और उसको परंपरागत रूप से बनाए रखने की क्षमता है। इसी कारण मनुष्य को शिक्षा एवं संस्कृति का निर्माता माना जाता है। सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण में व्यक्तित्व समाज शिक्षा और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनुष्य का कुछ निश्चित व्यवहार जन्म से आनुवंशिक रूप से प्राप्त होते हैं। शिक्षा एवं संस्कृति और सभ्यता की प्रगति अधिकतर एक साथ होती है। शिक्षा एवं संस्कृति के अंतर्गत संपूर्ण जीवन विधियों का समावेश होता है। शिक्षा एवं संस्कृति की पहली शुरुआत बाल शिक्षा से होती है, जो कि हम घर पर ही सीखते हैं, शिक्षा एवं संस्कृति का पहला पाठ अपने घर विशेष रूप से माता–पिता घर में उपस्थित सभी लोगों से प्राप्त करते हैं। हमारे माता–पिता ही जीवन में शिक्षा एवं संस्कृति के महत्व को बताते हैं। शिक्षा एवं संस्कृति अर्जित व्यवहार तथा समाज में रहने वाले व्यक्तियों का विचार है। शिक्षा एवं संस्कृति की विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि शिक्षा एवं संस्कृति अमूर्त है। इसका संबंध समाज और व्यक्ति से है ।

शिक्षा का स्वरूप :-

इस पृथ्वी पर मानव की प्रकृति सर्वोत्तम रचना है जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियां लेकर पैदा होता है लेकिन शिक्षा तथा संस्कृति के द्वारा मानव की जन्मजात शक्तियों में परिवर्तन किया जाता है शिक्षा और जीवन अन्योन्याश्रित है शिक्षा जीवन है, और जीवन शिक्षा है शिक्षा को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता, जीवन की आवश्यकता को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक व्यक्तिगत दूसरी सामाजिक व्यक्तिगत आवश्यकता में शारीरिक मानसिक भावात्मक चारित्रिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं में पारिवारिक सामाजिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आवश्यकताएं सम्मिलित है। शिक्षा व्यक्ति की इन सभी आवश्यकताओं को पूरा करती है इस प्रकार व्यक्ति और समाज दोनों की दृष्टि से शिक्षा महत्वपूर्ण है। शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया कहा गया है जिसका अर्थ है, कि शिक्षा समाज में समाज के लिए तथा समाज द्वारा संचालित एक प्रक्रिया है। समाज के अस्तित्व पर ही शिक्षा का अस्तित्व निर्भर करता है। शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा की प्रकृति, शिक्षा के उद्देश्य समाज के स्वरूप समाज की प्रकृति और समाज के उद्देश्यों पर निर्भर करते हैं, इसीलिए कहा जा सकता है, कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में ही जन्म लेता है। समाज में ही पल्लवित होकर जीवन व्यतीत करता है, और समाज में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का महत्वपूर्ण कर्तव्य हो जाता है,

कि बालकों में सामाजिक भावना जागृत करें उनमें दया परोपकार सहनशीलता सौहार्द सहानुभूति अनुशासन इत्यादि सामाजिक गुणों का विकास करें।

इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति की गूंज :-

भारत तथा इंडोनेशिया की साहित्य व संस्कृति एक समान है। मुस्लिम राष्ट्र होने के बावजूद वहां रामलीला का मंचन सर्वाधिक होता है। बाली द्वीप के संगम प्रोजेक्ट के तहत भारत से चुनिंदा साहित्यकारों को बुलाया जाता है। इस वर्ष उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान भारत से पुरस्कृत लेखक के० डी० सिंह को आमंत्रित किया गया। यहां गोष्ठी का विषय भारत इंडोनेशिया संस्कृति संबंध समानताएं और संवर्धन रहा। गोष्ठी में भारत इंडोनेशिया के मध्य साहित्य और सांस्कृतिक संबंधों के प्रकार और मजबूती के लिए किए जा रहे प्रयासों पर चर्चा हुई। के०डी० सिंह ने बताया कि बाली द्वीप वस्तुतः– भारतीय संस्कृति और परंपराओं के अधिक निकट है। 38 लाख की आबादी वाले देश में जहां विश्व की सर्वाधिक मुस्लिम आबादी निवास करती है। वह बाली में हिंदू सभ्यता और संस्कृति को जीवित रखना अदभुत है। बाली द्वीप में बांदानामक एक शहर भी है। जहां हर चौराहे पर रामायण और महाभारत के पात्रों भीम हनुमान राम सीता जी की मूर्तियां है। यहां एक समुद्र तट का नाम पांडव है। कुंती सहित पांचों पांडवों की विशाल प्रतिमा स्थापित है। बाली द्वीप ने अपने आंचल में बहुत ही सांस्कृतिक धरोहर को समेटा हुआ है। भारत की हिंदू सभ्यता यहां पूरी तरह जीवंत है। बाली में हिंदुत्व की नीव छठी–सातवीं शताब्दी में ऋषि मार्कंडेय ने रखी थी। इंडोनेशिया का बाली द्वीप हिंदू संस्कृति की खुशबू से सराबोर है। इण्डोनेशिया की धरती पर उतरते ही आपको भारतीय संस्कृति की झलक देखने को मिल जाएगी। क्योंकि इंडोनेशिया एयरलाइंस का लोगो गरुड़ पक्षी है। गुरुड़ को देखते ही आपके मन में भगवान राम और गरुड़ पक्षी की कहानी याद आ जाएगी।गरुण इंडोनेशिया का नेशनल एंबलम है। यह देश मुस्लिम भले ही हो लेकिन यहां की संस्कृति में भारतीयता मिली है। इंडोनेशिया में रामायण का प्रभाव इतना गहरा है, कि यहां की संस्कृति रामायण की पारंपरिक अवस्था से जुड़ी है। यहां पर रामलीला भी होती है, जो काफी फेमस है। देश के कई इलाकों में रामायण के अवशेष और रामकथा की नक्काशी वाले पत्थर भी मिलते हैं। भारत में जहां ऋषि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण को मानते हैं, जो संस्कृत भाषा में लिखी गई थी, वही इंडोनेशिया में कवि योगेश्वर द्वारा लिखित रामायण को माना जाता है, जो कावी भाषा में लिखी गई है। इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता जाने वाले यात्रियों के लिए उत्तर पश्चिम तट पर स्थित शहर के बीचो–बीच भव्य निर्मित अनेक घोड़ों से खींचे जाने वाले रथ पर श्री कृष्ण अर्जुन की प्रतिमा सर्वाधिक आकर्षित करने वाली है। इस शहर में जगह–जगह आपको हिंदू स्थापत्य कला का प्रदर्शन होता मिलेगा। वही इंडोनेशिया में 5 बड़े बड़े हिंदू मंदिर भी हैं। भारत के भगवान राम और अन्य देवताओं की मूर्तियां यहां के मंदिरों में आपको सहज ही मिल जाएंगे, जो कि इंडोनेशिया को भारत की संस्कृति से कहीं न कहीं जोड़ने का कार्य करते हैं। इंडोनेशिया की करेंसी देखने पर आपको उसमें गणेश जी की फोटो छपी हुई साफ–साफ दिखाई देगी। गणेश भगवान को एशिया में कला विज्ञान और शिक्षा के देवता के रूप में देखा जाता है, इसलिए वहां की करेंसी पर उनकी फोटो छपी हुई है। रामायण और महाभारत का प्रभाव पूरे इंडोनेशिया में है। बाली द्वीप के लोगों में महाभारत के युद्ध कुरुक्षेत्र को देखने की इच्छा बलवती है। वहां के लोग गंगा में पवित्र स्नान तथा शिव मंदिर को देखने को अपनी पहली प्राथमिकता में रखते हैं। उन्हें यहां भारत जैसा लगता है ।

इंडोनेशिया और भारत की संस्कृतियों में समानता :–

भारत और इंडोनेशिया की संस्कृति कई मायनो में एक समान है। यह देश धार्मिक सहिष्णुता एवं समरसता की मिसाल प्रस्तुत करता है। हमारी तरह इस देश में अयोध्या और लोगों के दिल में श्री राम हैं, तथा हिंदू त्योहारों तथा ईसाई त्योहारों के साथ ईद भी मनाई जाती है। देखा जाए तो भारतीय संस्कृति शुरू से गंगा जमुना तहजीब की हिमायती रही है। इंडोनेशिया की 87% जनसंख्या इस्लाम धर्मावलंबी है, लेकिन यह अपने जीवन में रामायण को अंगीकार करता है। यहां के लोग न केवल बेहतर मनुष्य बनने के उद्देश्य से रामायण पढ़ते हैं, बल्कि इसके चरित्रों की पात्रता भी वहां की स्कूली शिक्षा का अभिन्न अंग है। इस देश में हमारे देश की तरह ही असंख्य मंदिर और यहां के मुस्लिम भी भगवान श्रीराम और कृष्ण को अपने जीवन का नायक और रामायण तथा महाभारत को अपने दिल के सबसे करीब मानते हैं भारत की तरह ही इंडोनेशिया में रामायण सबसे लोकप्रिय ग्रंथ है, लेकिन भारत और इंडोनेशिया की रामायण में अंतर है। भारत में राम की नगरी अयोध्या है, वही इंडोनेशिया में योगया के नाम से जानी जाती है। योगया योगयाकर्ता को ही कहते हैं। यहां रामकथा को ककनिन या रामायण काकावीन के नाम से जाना जाता है। मुस्लिम बाहुल्य होने के बावजूद इंडोनेशिया के लोग रामायण को केवल पढ़ते ही नहीं बल्कि अपने जीवन की बेहतरी के लिए उसके पात्रों तथा उसमें छिपी हुई उनकी विशेषताओं तथा कलाओं को जीते भी हैं। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रामायण तथा महाभारत के पात्र का अद्‌भुत वह बेहतरीन मंचन इंडोनेशिया की सांस्कृतिक एवं पारंपरिक बाहुल्यता की विशेषता है। इंडोनेशिया के जावा प्रांत में महाभारत का मंचन बहुत ही कलात्मक तथा रचनात्मक तरीके से किया जाता है, और यह कला यहां पर बहुत ही लोकप्रिय है। शिखंडी को भारत में जिस किसी भी रूप में माना गया हो। इंडोनेशिया के जावा द्वीप ने उसे एक औरत माना गया है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है, कि जो यहां के लोगों को सुविधाजनक लगा उसे उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया। इंडोनेशिया के बाली द्वीप में रामायण अधिक प्रचलित है तो जावा में महाभारत। यहां पर वर्ष भर रमजान के महीने को छोड़कर महाभारत का मंचन होता रहता है। इंडोनेशिया में भले ही रामायण तथा महाभारत जैसे प्राचीन कथाओं के मंचन में भाषा की भिन्नता हो सकती है, परंतु भाव नहीं बदले हैं। इसका उद्देश्य एक ही है, अपने जीवन में कथाओं के बुरे पात्रों से सबक लेकर बुराई को दूर भगाना अच्छाई को जीवन में ग्रहण करना। यहां पर दो हजार से ज्यादा सांस्कृतिक समूहों के लोग निवास करते हैं। जहाँ भारतीय प्राचीन सांस्कृतिक रामायण के रचयिता आदि कवि ऋषि बाल्मीकि है, तो इंडोनेशिया में इसके रचीयता महाकवि योगेश्वर को माना जाता है। इसमें इन्होंने सीता को सीता और लक्ष्मण को इंडोनेशियाई नौसेना के सेनापति के रूप में प्रस्तुत किया है। वैसे तो इंडोनेशिया की मुख्य भाषा है जिसे स्थानीय लोग बहासा इंडोनेशिया के रूप में जानते हैं। अन्य भाषाओं में जावा बाली सुंडा मदुरा आदि शामिल है। यहां पर प्राचीन भाषा का नाम कावी था, जिसमें देश के प्रमुख साहित्य ग्रंथ है। रामायण की रचना संस्कृत भाषा में की गई है। रामायण काकावीन की रचना कावी भाषा में हुई है। स्थानीय भाषा में का कावी का अर्थ महाकाव्य होता है। कावी भाषा में कई महाकाव्यों का सृजन हुआ है। उसमें रामायण का स्थान सर्वोपरि है। इतना ही नहीं इंडोनेशिया के 20,000 के नोट पर देवतारा के साथ भगवान गणेश की तस्वीर दिखती है। इस नोट के पीछे के हिस्से पर बच्चों से भरी कक्षा की तस्वीर है। इंडोनेशिया में भगवान गणेश को कला शास्त्र और बुद्धिजीवी का ईष्ट माना जाता है। इंडोनेशिया की संस्कृति में श्री हनुमान जी का जीवन हमेशा से ही प्रेरणादायक रहा है। हनुमान जी को न केवल वीर अपितु सत्य स्नेह

सदाचार सेवा ब्रह्मचर्य एवं स्वामी भक्ति का जीवंत उदाहरण मानकर उनकी आराधना की जाती है, और उनके जीवन का मंचन सारे समाज को प्रेरित करने का कार्य किया जाता है। इंडोनेशिया के जावा में महाभारत का मंचन बहुत लोकप्रिय है। अगर जावा में रामायण का मंचन साल में 20 बार होता है, तो महाभारत का लगभग 100 बार। जावा द्वीप में विशाल मुस्लिम आबादी का अंचल है। इसका मध्य भाग आज भी कई भव्य मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर बोरोबुदुर भी यहीं पर स्थित है, जिसे वास्तुकला का अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है। संपूर्ण विश्व के सभी धर्मों को एक समान महत्व देने वाले इंडोनेशिया का इतिहास हिंदू और बौद्ध धर्म से सबसे ज्यादा प्रभावित दिखाई देता है। बाली भाषा में पुरा का मतलब मंदिर होता है। जावा द्वीप पर 15 बड़े हिंदू मंदिर है, जिनमें प्रम्बानन और बोरोबुदुर मुख्य है। दूसरे प्रमुख मंदिरों में 750 ईसवी में निर्मित देंग मंदिर 15 वी सदी में बनाए 'सको मंदिर', किदाल मंदिर, सुख मंदिर तथा पनरतन मंदिर शामिल है। इन मंदिरों की विशेषता इतनी अद्वितीय है कि इन्हें यूनेस्को द्वारा सांस्कृतिक विरासत की श्रेणी में शामिल किया गया है। उत्तरी सुमात्रा में 7 हिंदू मंदिर खोजे गए हैं, और राजधानी जकार्ता में भी तीन विशालकाय हिंदू मंदिर स्थापित है। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि इंडोनेशिया भले ही एक मुस्लिम देश है, लेकिन वहां की संस्कृति शिक्षा और सभ्यता में आज भी हिंदू धर्म का विशेष प्रभाव है। ऐसे में यह कहा जा सकता है, कि इंडोनेशिया पूरे विश्व में सांस्कृतिक विविधता और हिंदू मुस्लिम एकता का अद्वितीय उदाहरण है।

संस्कृति से उपजी धर्मनिरपेक्षता :-

विश्व के मुस्लिम बाहुल्य देशों में इंडोनेशिया धर्म निरपेक्षता का अद्‌भुत उदाहरण है। जब वहां हिंदू अपने उत्सव मनाते हैं, तो इस्लाम के बड़े–बड़े धर्मगुरु भी इन समारोहों में बढ़–चढ़कर भाग लेते हैं। धर्म संप्रदाय मत और जात–पात के आधार पर भेदभाव की प्रवृत्ति से मुक्त इंडोनेशिया के लोग केवल रामायण व महाभारत के प्रति श्रद्धा ही नहीं रखते अपितु योगेश्वर श्रीकृष्ण धनुर्धर अर्जुन तथा वैदिक साहित्य में शामिल विभूतियों के प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। इंडोनेशिया का एक द्वीप बाली तो हिंदू बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण हिंदू बाली के नाम से भी जाना जाता है। ये भारत से विदेश में आकर बसे लोगों की संताने नहीं है, अपितु यहां के मूल निवासी हैं, जिन्होंने सैकड़ों वर्ष पहले बौद्ध धर्म को अपनाया था। इंडोनेशिया के दूसरे प्रमुख द्वीप जावा, सुमात्रा तथा बोर्नियो इत्यादि यह मुस्लिम बाहुल्य है, किंतु इसके बावजूद वह मुस्लिम, हिंदू, ईसाई और बौद्ध भी निवास करते हैं। इस देश का जावा द्वीप प्राकृतिक सुषमा एवं शांतिपूर्ण वातावरण के लिए प्रसिद्ध है, तथा जावा के पश्चिम क्षेत्र में विलुप्त हो चुके पक्षियों की शरण स्थली, पलाऊ का भी अपना अहम स्थान है। यहां की लोकप्रिय कलाओं में अंगल रंग संगीत विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिस के स्वर बांस के वाद्य यंत्रों से उभर कर श्रोताओं का मन मोह लेते हैं।

शिक्षा और संस्कृति के विकास में समस्याएं एवं समाधान :-

इंडोनेशिया की शिक्षा एवं संस्कृति भारत के समान है। बाली द्वीप पर रहने वाले हिंदू लोगों ने अपनी शिक्षा एवं संस्कृति का प्रचार नहीं किया, जो वहां पर प्रचार व प्रसार हुआ है, वह एक प्राकृतिक कारण है। एक सदी में वहां के हिंदुओं ने भी मुस्लिम धर्म अपनाया, जो उनमें से हिंदू बचे, वह बाली द्वीप पर रहने लगे, इसलिए बाली द्वीप पर हिंदुओं की संख्या अधिक है। इंडोनेशिया प्राचीन काल में एक हिंदू राष्ट्र था इसलिए वहां खुदाई में अनेक प्रकार के मंदिर मिलते हैं वहां की शिक्षा केवल बाली द्वीप पर ही सीमित रही। वहां के राजाओं ने भी कोई प्रयास

नहीं किया, कि अपनी संस्कृति को अन्य द्वीपों तक पहुंचाएं। अगर वहां हिंदू दूसरे द्वीपों पर अपना अधिकार जमा लेते, तो आज कई ऐसे बाली द्वीप इंडोनेशिया में होते, जहां पर हिंदुओं की संख्या अधिक मात्रा में मिल जाती। इंडोनेशिया में केवल 2% से भी कम हिंदू रहते हैं, वहां के लोगों को हिंदू धर्म के लाभ अपनी शिक्षा एवं संस्कृति को और तेजी से बढ़ना होगा उन्हें अपने व्यापार को दूसरे द्वीपों में जोड़ना होगा वहां की रामायण में महाभारत की अच्छाइयों को और अधिक स्पष्ट करना होगा। धीरे–धीरे अन्य द्वीपों में अपना अधिकार करना होगा। भारत के लोगों को वहां पर व्यापार आदि के लिए जाना होगा, जिससे वहां की शिक्षा एवं संस्कृति का विकास हो सके। हमारी भारतीय सरकार को वहां पर अपने बजट से सांस्कृतिक स्थल बनवाने चाहिए। कुछ राष्ट्रीय स्तर के खेल जो हिंदू रीति–रिवाज से संबंधित हो उन को बढ़ावा देना चाहिए। उसे इण्डोनेशिया की शिक्षा एवं संस्कृति विकास की ओर अग्रसर रहेगी। वहां के लोग अपने जीवन को और खुशहाल बना सकेंगे।

निष्कर्ष :–

शिक्षा एवं संस्कृति किसी समाज में गहराई से व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उसे समाज के सोचने विचारने, कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, संगीत, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु कला, शिल्प, दर्शन, धर्म और विज्ञान रीति रिवाज परंपराओं पर्व जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष के अपने दृष्टिकोण आदि में परिलक्षित होते हैं। मानव का शारीरिक मानसिक अस्तित्व में जिन साधनों से बना रहता है। उन साधनों की समग्रता को ही शिक्षा एवं संस्कृति कहते हैं। जीवन को सर्वगुण संपन्न और सफल समृद्ध करने तथा सत् चित और आनंद प्राप्ति करने में शिक्षा एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इंडोनेशिया और भारत की संस्कृति इसी प्रकार की है। रामायण और महाभारत आदि ग्रंथों से सीख मिलती है, कि जीवन में किस प्रकार सफल व प्रसन्न रहा जा सकता है हिंदुस्तान के दो महान ग्रंथ महाभारत और रामायण का संपूर्ण इंडोनेशिया पर गहरा प्रभाव है यहां के लोगों की मानसिकता के साथ साथ रग रग में इन महाकाव्यों के पात्र बसे हुए हैं। इन ग्रंथों की बड़ी खूबसूरती तथा सुदूर सज्जा श्रृंगार के साथ सिर्फ यहां पर नियमित मंचन किया जाता है, बल्कि लोग इनके पात्रों को आम जीवन में जिया भी करते हैं। यह कहना कतई भी अनुचित न होगा, कि जिस बेहतरता से इन महा ग्रंथों का इंडोनेशिया में मंचन होता है, उतना तो शायद भारत में भी नहीं होता है।

संदर्भ :–

1. विश्व का भूगोल माजिद हुसैन द्वितीय संस्करण
2. भारतीय संस्कृति का संवाहक इंडोनेशिया
3. दक्षिण पूर्वी एशिया का प्रादेशिक अध्ययन, डॉ० यू० बी० सिंह राजीव प्रकाशन मेरठ
4. दक्षिण पूर्व एशिया का प्रादेशिक भूगोल, डॉ० बादशाह आजाद डॉ0 मनोज उपाध्याय विश्व भारती पब्लिकेशन दिल्ली
6. मानसून एशिया, डॉ० मनोज उपाध्याय, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
7. एशिया का भूगोल डॉ० चतुर्भुज मामोरिया डॉ० के० एम० एल० अग्रवाल साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
8. केंद्रीय खुफिया एजेंसी (5 मार्च 2010) सी0आई0ए0द0वर्ल्ड फैक्ट बुक–इण्डोनेशिया
9. Infoplease (एनडी) इंडोनेशिया : इतिहास, भूगोल, सरकार और संस्कृति infoplease-com
10. अमेरिका का गृह विभाग (जनवरी, 2010) इंडोनेशिया (जनवरी, 2010)

Email- 2011vaad@gmail-com मो० न० :– 9411611360

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 110-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मधुबनी : बिहार की समृद्ध लोक कला एवं चित्रकला

डॉ० साधना द्विवेदी

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ

भारत की समृद्ध कला परम्परा में लोक कलाओं का गहरा रंग है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक मधुबनी कला की अमर बेल फैली हुई है। कला दीर्घा के इस स्तम्भ में हम आपसे मधुबनी लोक कला के विषय में चर्चा करेंगे। सबसे पहले हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि मधुबनी का इतिहास क्या है।

मधुबनी भारत के बिहार प्राँत में दरभंगा मण्डल के अन्तर्गत एक प्रमुख शहर एवं ज़िला है। दरभंगा एवं मधुबनी को मिथिला संस्कृति का द्विध्रुव माना जाता है। मैथिली तथा हिन्दी यहाँ कि प्रमुख भाषा है। विश्वप्रसिद्ध मिथिला पेंटिंग की वजह से मधुबनी को विश्वभर में जाना जाता है। मधुबनी चित्रकला मिथिलाँचल क्षेत्र जैसे बिहार के दरभंगा, मधुबनी एवं नेपाल के कुछ क्षेत्रों की प्रमुख चित्रकला है। प्रारम्भ में मधुबनी कला का प्रयोग रंगोली के रूप में किया जाता था फिर धीरे–धीरे आधुनिक रूप में कपड़ों, दीवारों एवं कागज़ पर चित्रित किया जाने लगा। वर्तमान में मिथिला पेंटिंग के सम्मान को और बढ़ाये जाने को लेकर तकरीबन 10,000 वर्ग फिट में मधुबनी रेलवे स्टेशन के दीवारों को मिथिला पेंटिंग की कलाकृत्तियों से सराबोर किया गया है। यह अद्भुत कलाकृत्तियाँ विदेशी सैलानियों को खूब भाती हैं। (चित्र संया 1, 2, 3 व 4)

मधुबनी ज़िले की मुख्य भाषा मैथिली है जो सुनने में मधुर एवं सरस है। प्राचीन काल में यहाँ के वनों में मधु (शहद) अधिक पाया जाता था इसलिए इसका नामकरण मधुबनी हुआ। मधुबनी मिथिला संस्कृति का अंग एवं केन्द्र बिन्दु रहा है। राजा जनक और सीता का वास स्थल होने से हिन्दुओं के लिए यह क्षेत्र अति पवित्र एवं महत्वपूर्ण है। मिथिला पेंटिंग के अलावा प्रसिद्ध लोककलाओं में सुजनी (कपड़े की कई तहों पर रंगीन धागों से डिज़ाइन बनाना, सिक्की–मौनी खर एवं घास से बनाई गई लकड़ी पर नक्काषी का काम शामिल है।

पर्व त्योहारों या विशेष उत्सव पर यहाँ घर में पूजागृह एवं भित्ति चित्र (चित्र संख्या–5 व 6) का प्रचलन पुराना है। सत्रहवीं शताब्दी के आस–पास आधुनिक मधुबनी कला शैली का विकास माना जाता था। मधुबनी शैली मुख्य रूप से जितवारपुर (ब्राह्मण बहुल) और रतनी (कायस्थ बहुल) गाँव से एक व्यवसाय के रूप में अपनाया गया। यहाँ से विकसित हुए पेंटिंग को इस जगह के नाम पर मधुबनी शैली कहा गया। इसके पेंटिंग में पौधों के पत्तियों, फूलों और फूलों के रंग निकालकर कपड़े या कागज़ के कैनवस पर भरा जाता है। मधुबनी पेंटिंग शैली की मुख्य खासियत इसके निर्माण में महिला कलाकारों के द्वारा तैयार किया हुआ कोहबर, शिव–पार्वती विवाह, राम–जानकी स्वयंबर, (चित्र संख्या–7) कृष्ण लीला जैसे विषयों पर बनाया गयी पेंटिंग में मिथिला संस्कृति की पहचान छिपी है। पर्यटकों के लिये यहाँ की कला और संस्कृति खासकर पेंटिंग आकर्षण का मुख्य बिन्दु रहता है। इस कला की माँग भारत ही नहीं अपितु विदेशों में होती है। इसके उत्पादों में कार्ड, परिधान, बैग, दरी आदि

शामिल होता है।

आज भी मिथिलाँचल के कई गावों की महिलाएँ इस कला में दक्ष हैं। अपने असली रूप में ये तो पेंटिंग गाँवों की मिट्टी से लीपी गई झोंपड़ियों में देखने को मिलती थी, लेकिन इसे अब कपड़ों या फिर पेपर के कैनवास पर खूब बनाया जाता है। समय के साथ–साथ चित्रकार कि इस विधा में पासवान जाति के समुदाय के लोगों द्वारा राजा शैलेन्द्र के जीवन वृताँत का चित्रण भी किया जाने लगा है।

इसके चित्रों में खासतौर पर कुल देवता का भी चित्रण होता है। हिन्दु देव–देवताओं की तस्वीर, प्राकृतिक नज़ारे जैसे–सूर्य व चन्दमा, धार्मिक पेड़–पौधे जैसे–तुलसी विवाह के दृश्य, स्वयंबर, कृष्ण–गोपी लीला आदि के दृश्य दिखाई देंगे। मधुबनी पेंटिंग दो तरह की होती हैं–भित्ति चित्र और अल्पना या अरिपन। नीला और काला रंग जो चित्रों को उभारने व उसका आकर्षण बढ़ाने का मुख्य कार्य करते हैं। इन गहरे रंगों का प्रयोग चित्रों में सजीवता प्रकट करती है। कुछ हल्के रंग से भी चित्रों में निखार लाया जाता है जैसे–पीला, नारंगी, गुलाबी, नींबू रंग। इन रंगों को बनाने के लिये घरेलू चीज़ों का इस्तेमाल किया जाता है। जैसे–हल्दी, केले के पत्ते, लाल रंग के लिये पीपल की छाल और दूध का प्रयोग के पलाश के फूलों का रंग। ये रंग पूर्णतया प्राकृतिक संसाधनो से बनाये जाते हैं। भित्ति चित्रों के अलावा अल्पना का बिहार में बहुत प्रचलन है। इसे बैठक या फिर दरवाज़े के बाहर बनाया जाता है। पहले इसे इसलिए बनाया जाता था कि जिससे खेतों की पैदावार अच्छी हो लेकिन आजकल हर शुभकार्यों में इस तरह के चित्रों को बनाया जाने लगा है। इसका प्रयोग कोहबर (शादी–विवाह के समय घर के किसी एक कमरे में दीवार पर बनाया जाने वाला चित्र) बनाने के लिए किया जाता है। जिसमें मुख्य रूप से दूल्हा–दुल्हन के आकृति बनायी जाती है। इन चित्रों को बनाने के लिए माचिस की तीली व बाँस की कलम को प्रयोग में लाते हैं, माचिस की तीली से बहुत सुन्दर व बारीक आकृति बनती है। रंगों की पकड़ को बनाने के लिए बबूल के वृक्ष की गोंद को मिलाया जाता है। चित्रों को बनाने से पहले हाथों से बने कागज़ को तैयार करने के लिए कागज़ पर गाय का गोबर को घोल बनाकर तथा इसमें बबूल का गोंद डाला जाता है। सूती कपड़े से गोबर के घोल को कागज़ पर लगाया जाता है और धूप में सूखाने के लिए रख दिया जाता है।

मधुबनी चित्रकला, दीवार, कैन्वास एवं हस्त निर्मित कागज़ पर वर्तमान में चित्रकारों द्वारा बनायी जाती है। गाय के गोबर में एक खास तरह का रसायनिक पदार्थ होने के कारण दीवार पर विषेष चमक आ जाती है। इसे घर के तीन जगहों पर बनाने की विशेष परम्परा है जैसे–पूजा स्थान, कोहबर (विवाहितों के कमरे में) या किसी विशेष उत्सव में। मधुबनी पेंटिंग में जिन देवी–देवताओं को चित्रण किया जाता है वे हैं–माँ काली, माँ दुर्गा, सीता–राम, राधा–कृष्ण, राजा–रानी, उत्सवों को मनाते हुये गौरी–गणेश, प्राकृतिक रम्य नज़ारे, विष्णु–'लक्ष्मी, विष्णु के दश अवतार, स्वयंबर, पशु–पक्षी, फूल–पत्ती और स्वास्तिक के निशान को सजाया संवारा जाता है।

मधुबनी कला में पदम्श्री सम्मानित महा सुन्दरी देवी, जगदम्ब देवी, सीता देवी, बहुआ देवी, रसीदपुर की गंगा देवी और भारती दयाल आदि ने उल्लेखनीय और सराहनीय कार्य किये हैं। इन्होंने मधुबनी चित्रकला को एक गाँव से निकालकर पूरे विश्व में मधुबनी चित्रकला को पहचान देने में अकल्पनीय कार्य किया है।

आज मधुबनी कला–कृत्तियाँ, कला दीर्घाओं, संग्रहालयों और हस्तकला की दुकानों के या ऑन–लॉइन विश्वजाल पर भी आसानी से खरीदी जा सकती हैं।

1. Archer, W.G. Madhubani Paintings Mumbai 1998.

2. Thakur U, Madhubani Paintings, Abhinava Publications, New Delhi 1982.
3. Madhubani Paintings Govt. of Bihar Department of Industries (BIHAR).
4. Dayal Bharti - Madhubani Arts (Indian Art Series), Museum of Sacred Art, 2015

चित्र संख्या–1

चित्र संख्या–2

चित्र संख्या–3

चित्र संख्या–4

चित्र संख्या–5

चित्र संख्या–6

चित्र संख्या–7

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 116-119

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सनातन वैदिक संस्कृति में पर्यावरण

डॉ. उत्तम प्रकाश शर्मा, सह आचार्य,
पादप प्रजनन एवम् आनुवंशिकी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चरल सांइसेज,
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान ।

भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति ने हमें प्रकृति के साथ–साथ चलने की शिक्षा दी। आज सिर्फ यही रास्ता बचा है जो कि पूरी दुनिया को आइना दिखाऐगा और धरती को भी बचायेगा। ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असन्तुलन, जैव विविधता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का एक ही उत्तर है भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति जो पर्यावरण के साथ–साथ प्रकृति एवं वन्य जीवनों के संरक्षण की अनूठी जीवन पद्धति है। भारतीय संस्कृति एवं जीवन शैली हमेशा से पर्यावरण संरक्षण की पोषक रही है। भारतीयों के विचार में वन के साथ–साथ वन्य जीवन की रक्षा भी महत्वपूर्ण मानी गई है। हिन्दू दर्शन के अनुसार प्रत्येक हिन्दू को अपने जीवन के कुछ वर्ष वानप्रस्त (वन) में बिताने की व्यवस्था थी, अग्नि पुराण में ऐसा ही उल्लेख आया है कि वृक्षों के अनैतिक रूप से पालन करने पर अतिवृष्टि होकर अकाल पड़ता है– **यिते पत्र विच्छेदं, सुपष्प फलनिस्तये, अनावृष्टि भय घोर तकस्मन्दे से प्रजायते। (अग्नि पुराण)** भारतीय संस्कृति में वट (बड़) अश्वस्थ (पीपल), विल्व (बेल), वृन्दा (तुलसी) अपराजिता, पद्यम (कमल), कदली (केला), दुर्व (दूब), कुश, अरणी, आम्र (आम), देवदारू, पदम आदि वृक्षों एवं पादपों को देववृक्ष की संज्ञा प्रदान की गई है तथा इन वृक्षों एवं पादपों की पूजा की जाती है। इन वृक्षों के नीचे मल–मूत्र त्याग करना पाप समझा जाता है। वृक्षों की महिमा को ध्यान में रखते हुए हमारे ऋषि मुनियों ने कतिपय सुरम्य काननों, उद्यानों एवं वनों का उल्लेख किया है जैसे अंगिरा वन, नेमिषारण्य वन, कंलिग वन, बदरि वन, इन वनों, उपवनों के अनैतिक विदोहन करने पर अनावृष्टि एवं अकाल पड़ने की संभावना बनी रहती है। देव वन – यह एक विशिष्ट प्रकार की संरक्षण पद्धति है। प्राचीन काल से हमारे पूर्वजों ने दूर–दृष्टि से इस संरक्षण पद्धति का सूत्रपात किया, जिसका उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण था। इस पद्धति के तहत कुछ विशेष क्षेत्र के वनों में पेड़ काटने पर पूर्णतः प्रतिबंध है तथा पेड़ काटना पाप समझा जाता है। सम्पूर्ण भारत में ऐसे कई देववन है, जिन के तहत इस विशिष्ट पद्धति से वनों का संरक्षण आज भी जारी है।

हिमम हिम मिति वयात योजनायुत दूरत, सर्वपापे विर्मुच्येत विष्णु सामुच्यमश्नुते।। (मानसखण्ड)

दत्तात्रेय के अनुसार हिमालय के कण–कण में शिव का वास है। हिमालय को देखे–बिना दस हजार योजन दूर से उसका स्मरण मात्र करने से काशीवास जैसे फल मिलता है। जिस स्थान पर हिम भी न हो, तो भी हिमम के उच्चरण मात्र से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है और विष्णुधाम को प्राप्त होता है। तरू (वृक्ष) को गुरू स्वीकार करते हुए भवभूति ने लिखा है – **धते कुसुमपत्र फलावनीनां धर्मव्यथा वहित शीतमंथारूजंच। यो देहमथयथि चान्य सुख स्यहेता, हास्मैदान्य गुरूवे तरूवे नमस्ते।।** अर्थव वेद में औषधि, वनस्पति और पृथ्वी

की शान्ति के साथ सर्वारिस्टी की शान्ति की कामना की गई है। **ऊँ धौ शान्ति, पृथ्वी शान्तिः औषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्ति सर्वारिष्ठः शान्ति हिः ।।** ऋग्वेद के अनुसार सृष्टि के प्रारंभ में जो हिम वनस्पतियां सर्व प्रथम प्राप्त हुई उनमें से एक सौ सात स्थानों का ज्ञान हमारे ऋषि मुनियों को था – **औषधि पूर्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुंग पुरा। मनै नु नभ्रणामहं रातं धामानि सप्त् च ।।** भौगोलिक एवं जलवायु के आधार पर हम वनों को सदाबाहर वन, पर्णपाती वन, वर्षा वन, ऊष्ण कटिबंधीय वन आदि कह सकते है। लेकिन भारतीय संस्कृति में कतिपय वनस्पतियों के नाम पर क्षेत्र विशेष के नाम रखे गये है जैसे – कलिंग (कुटज) मागधी (पिप्पली), व्रांहीक (केसर), थवानी (अजवायन), सौराष्ठी (फिटकरी), मलयज (चंदन), केदारज (पधारव), चीनाक (कर्पूर) कहने का आशय है कि वन भारतीय जीवन पद्धति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वन्य जीवों की उपयोगिता के कारण इनका संरक्षण भी भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मोर के साथ सरस्वती, सिंह के साथ दुर्गा, शिव के साथ नंदी, लक्ष्मी के साथ उल्लू, देवराज इन्द्र के साथ हाथी, गणेश के साथ मूसक (चूहा) भी पूजनीय है। योतिष में राशियों के नाम भी पशुओं के साथ रखे गये है। लेकिन प्रश्न यह है कि आज **कितने लोग अपने बच्चें को वेद, पुराण व स्मृतियों की शिक्षा देते है? ये बातें हमारे पाठ्यमों में शामिल क्यों नही होती ?** भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति ने हमें प्रकृति के साथ–साथ चलने की शिक्षा दी है। आज सिर्फ यही रास्ता बचा है जो कि पूरी दुनिया को आइना दिखाऐगा और धरती को भी बचायेगा। ग्लोबल वार्मिग, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असन्तुलन, जैव विविधता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का एक ही उत्तर है भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति जो पर्यावरण के साथ – साथ प्रकृति एवं वन्य जीवनों के संरक्षण की अनूठी जीवन पद्धति है।

ऋग्वेद में वायु के औषधीय महत्त्व को स्वीकारा गया है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है–हे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र जल की शुद्धता का वर्णन करते हुए कहता है, आओ सभी मिलकर प्रवाहित जल के प्रशंसा के गीत गाएं जो हजारों धाराओं से स्फटिक की तरह बहकर आंखों को आनंद देता है। उपनिषद्कारों ने ऊर्जा के अपरिमित स्रोत सूर्य को जगत की आत्मा कहकर उसकी अभ्यर्थना की है, सूर्य को प्राण की संज्ञा दी है। यज्ञों के माध्यम से वायु मंडल को शुद्ध करना भी वेदों का विषय रहा है। वैदिक काल में पर्यावरण के परिष्कार के लिए यज्ञ–हवन संपन्न किए जाते थे।

सामवेद में जीवन की मंगल कामना और प्रकृति की अविरल उपासना के भाव वर्णित हैं। इसमें वनस्पतियों और पशु जगत तथा औषधि विज्ञान के सुंदर मंत्रों के उदारण हैं। सामवेद कहता है – हे इंद्र, सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम, आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है। अथर्व वेद में भी पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन संबंधी चिंतन का गौरव गान हुआ है। पृथ्वी सूक्त में अथर्वण ऋषिधरा की महानता, उदारता, सर्व व्यापकता आदि अनंत गुणों पर विस्मित हो कह उठते हैं, हे माता ! आपके लिए ईश्वर ने शीत, वर्षा तथा वसंत ऋतुएं बनाई हैं। दिन–रात के चक्र स्थापित किए हैं। इस कृपा के लिए हम ईश्वर के आभारी हैं। वे खनन से पूर्व धरती माता से प्रार्थना करते हैं कि हे मां, जीविको पार्जन के लिए हम ऐसा करने को बाध्य हैं, किन्तु हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह तुम्हें पुनः हरा–भरा कर दे। हम भूमि के जिस स्थान पर खनन करें, वहां शीघ्र ही हरियाली छा जाए। आप से प्रार्थना है कि ऐसी सद्बुद्धि दें जिससे हम आपके हृदय स्थल को न तो आहत करें, और न ही आपको दुःख पहुंचाएं। व्यक्ति स्वस्थ, सुखी दीर्घायु रहे, नीति

पर चले और पशु वनस्पति एवं जगत के साथ साहचर्य रखे, यही वैदिक साहित्य की विशेषता है।
वैदिक कर्मकांडों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरुक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया है। आरण्यक ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। 'अरण्ये भवमेति आरण्य कम्च कह कर आरण्यक का अर्थ स्पष्ट किया गया है। बृहदारण्य कभी 'अरण्येनूत्य मानत्वात्अरण्यकम्के रूप में इस का समर्थन करता है। इसका विषय प्राण विद्या है। अंतरिक्ष और वायु से प्राण का संबंध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राण शक्ति मिलती है जिससे विकास की गति अग्रसर होती है।

उपनिषदों में जल, वायु, पृथ्वी और अंतरिक्ष का विशद्वर्णन हुआ है। इसमें प्रकृति की महत्ता का पर्याप्त मान्यता प्रदान की गई है। इनके अनुसार पदार्थ की उत्पत्ति एवं जीव–जगत की सृष्टि अग्नि जल और पृथ्वी के विनियोग से हुई है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् ने इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की विवेचना की है। छांदोग्य उपनिषद् स्पष्ट करता है कि सात्विक ओर से परिष्कृत में का सीधा संबंध है। इसमें आगे और स्पष्ट करते हुए उल्लेख है कि पृथ्वी, जल और पुरुष सभी प्रकृति के घटक हैं। पृथ्वी का रस जल है और जल का रस औषध है। औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम और साम का रस उद्गीथ हैं, अर्थात पृथ्वी तत्व में ही सब तत्वों को प्राणवान बनाने के प्रमुख कारण है।

वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण–असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। इनमें हुए अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल–प्रदूषण, वायु–प्रदूषण, मृदा–प्रदूषण की समस्याएँ चारों ओर व्याप्त हैं।

जल जीवन का प्रमुख तत्त्व है। इसलिए, वेदों में अनेक सन्दर्भों में उसके महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद (1.23.248) में श्अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजंश् के रूप में जल का वैशिष्ट्य बताया गया है। अर्थात, जल में अमृत है, जल में औषधि–गुण विद्यमान रहते हैं। अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता–स्वच्छता को बनाए रखना।

वेदों के पश्चात रामायण और रामचरित मानस की बात करें तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसी दास जी न मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है तभी मानव जीवन आनंद कारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है।

तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इस प्रकार किया हैः–

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग जग पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसी दास लिखते हैं, -

रीझि–खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है।
वृक्षा रोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया –

"सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।"

रामायण कालीन ग्रंथों में सजीव–निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि जी ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे जिनमें जीव–जन्तु एवं, पशु–पक्षियों का समूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल मे भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्री कृष्ण का बाल्य काल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने तो पग–पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए।

हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है– "वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्यः पर्जन्या दन्न संभवः" अर्थात वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को आनन्द दायक कहते हैं।

सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक के शासन काल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया। आचार्य चाणक्य ने तो आदर्श शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से अरण्य पालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हिन्दू धर्म व जीवन में चार आश्रम निर्धारित हैं जिन में से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास का सीधा संबंध वनों से माना गया है। वृक्षों को देवता मानकर पूजने से उनका संरक्षण भी हो जाता है। मत्स्य पुराण में वृक्ष की तुलना मनुष्य के दस पुत्रों से की गई है।

"दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः
दशह्रद समः पुत्रो, दशपुत्र समोद्रुमः"।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की वैदिक भावना है कि – "शं न उरुची भवतु स्वधाभिः। ऋग्वेद 7, 35, 3 (अन्नादि से युक्त पृथिवी हमारी शांति के लिए हो।) स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनीयच्छानः शर्मस प्रथाः। यजुर्वेद 36, 13 (पृथिवी हमारे लिए कंटकर हित और बसने योग्य हो।) प्रकृति के दोहन, शोषण से मनुष्यों ने प्रकृति के नियमों की अवहेलना कर समस्त प्राणियों के जीवन को संकट में डाल दिया है । परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति दंड देने से नहीं चूकती है।

संदर्भ :-

1. पर्यावरण वर्तमान और भविष्य– डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।
2. डॉ. कल्पना कुमारी 2021–वेदों में वनस्पति विज्ञान, आई जे एस आर जर्नल, ISSN 23947519
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति – आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 3
4. पुष्पांग सूत्र, संस्कृत में विज्ञान

E-mail : uttampsharma9@gmail.com मो. 8209320824, 7737274683

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 120-128

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन

प्रो. भूपेन्द्र कुमार पटेल, प्राचार्य
नवीन शासकीय महाविद्यालय, नवागढ़
(शहीद नंद कुमार पटेल विश्वविद्यालय, रायगढ़)
जिला – जांजगीर – चांपा (छ.ग.)

(मुख्य शब्द : स्वामी विवेकानंद, वेदांत दर्शन, ज्ञान और कर्म योग, संस्कृति और धर्म, विश्वधर्म एकता, समझदारी और संयम, स्वावलम्बन और आत्मविश्वास, व्यक्तिगत विकास और समस्याओं का समाधान, जीवन का उद्देश्य और महत्व, शिक्षा का महत्व और आध्यात्मिकता.)

स्वामी विवेकानंद, एक भारतीय ऋषि, दार्शनिक, और धर्म–शिक्षक थे जो अपनी अनूठी दृष्टि और उनके सुझावों के लिए जाने जाते हैं। उनकी शिक्षा दर्शन उन्हें दुनिया भर में मान्यता दिलाते हैं। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन बहुत समृद्ध और आधुनिक है, जो लोगों को जीवन का उद्देश्य और ध्येय बताता है। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन आध्यात्मिकता, धर्म, देशभक्ति, समाज सेवा, वैज्ञानिक विचार और उद्यम को एक साथ जोड़ता है। उन्होंने मानव जीवन के समस्त पहलुओं का विश्लेषण किया और उन्हें आध्यात्मिक दर्शन के माध्यम से समझाया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सभी जीवों में ईश्वर का निवास होता है, और इसलिए हमें सभी जीवों के प्रति सम्मान करना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद ने अपने शिक्षा दर्शन के माध्यम से जीवन का उद्देश्य बताया और इसे प्राप्त करने के लिए कुछ मार्ग दर्शन दिए। उन्होंने बताया कि जीवन का उद्देश्य सिर्फ धन, सम्मान और सुख नहीं होता। उन्होंने बताया कि जीवन का उद्देश्य समष्टि के हित में काम करना होता है। उन्होंने शिष्यों को बताया कि जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य आत्म–समर्पण होता है, जिससे मनुष्य सदा आनंदित रहता है। वह लोगों को उस आंदोलन की ओर प्रेरित करते हैं, जो इनके आत्म–समर्पण के लिए संचालित होता है। उनका शिक्षा दर्शन उनके जीवन के साथ–साथ उनके उपदेशों एवं उनकी विचार धारा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वे एक संत, धर्मगुरु, तत्त्वज्ञ और समाज सुधारक थे, जिनका जीवन और कार्य क्षेत्र देश और विदेश दोनों में था। उनकी उपदेशों का उद्देश्य समस्याओं का समाधान, मन की शुद्धि और सबका उत्थान था। उनका शिक्षा दर्शन अत्यंत उच्च एवं महत्वपूर्ण है, जिसमें वे उपलब्धि, सफलता और सुख के बारे में समझाते हैं।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन सभी धर्मों, संस्कृतियों और समुदायों के लिए समान रूप से उपयोगी है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों और वेदांत तत्त्वों के आधार पर अपनी विचार धारा का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने समस्याओं का समाधान विवेकपूर्ण विचार धारा और तत्त्वज्ञान के द्वारा दिया है। वे समझाते हैं कि उत्तम जीवन जीने के लिए, समस्याओं के सामने उत्तर निकालने के लिए और संदेहों को दूर करने के लिए

सही विचार धारा अपनाना जरूरी है। उनका का शिक्षा दर्शन अत्यंत सरल और स्पष्ट है। वे समझाते हैं कि मनुष्य का उद्देश्य जीवन में सम्पूर्णता को प्राप्त करना होता है। इसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक त्रिभुज का आधार बताया है जिसमें शरीर, मन और आत्मा होते हैं। इन तीनों के संतुलन में हमें उत्तम जीवन जीने की कला सीखनी चाहिए।

उन्होंने शिक्षा दर्शन में अपनी विचार धारा को विस्तार से व्यक्त किया है। उन्होंने कहा है कि सभी मनुष्यों में ईश्वर की एक अंशिका होती है जिसे आत्मा कहते हैं। इस आत्मा को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने ध्यान एवं योग को बहुत महत्व दिया है। वे योग के माध्यम से मन को शुद्ध और स्थिर करने का समझाते हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, ज्योतिष, वेद, उपनिषद आदि पर भी गहरी अध्ययन किया था जो उनके शिक्षा दर्शन के तथ्यों को समझाने में मदद करते हैं। उन्होंने स्वयं को एक सच्चा भारतीय मानते थे और उनका महान् योगदान भारत की संस्कृति और धर्म को पूरे विश्व में प्रचारित करने में था। उन्होंने शिक्षा दर्शन में शिक्षार्थियों के विकास और उनके जीवन की उत्तमता को बढ़ाने के लिए बहुत सारे मार्ग दर्शन प्रदान किए हैं। उन्होंने शिक्षार्थियों से कहा है कि उन्हें सच्चे संघर्षों से नहीं घबराना चाहिए और वे अपने सपनों का पीछा करते रहने चाहिए।

उन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व के सामने पेश करने का भी संदेश दिया था। उन्होंने कहा है कि भारतीय संस्कृति जीवन को अनुभव करने का निरंतर अध्ययन है। उन्होंने भारतीय जीवन–दर्शन को समझाने के लिए उपनिषदों और वेदों को अध्ययन करने का सुझाव दिया है। स्वामी विवेकानंद ने अपने शिक्षा दर्शन में स्वयं का उदाहरण देकर शिक्षार्थियों के लिए मार्गदर्शन किया है। उन्होंने जीवन में ध्यान की महत्ता को समझाया है और स्वस्थ शरीर के लिए योग अभ्यास करने की सलाह दी है। उन्होंने शिक्षार्थियों को शिक्षा के लिए न केवल किताबें और शिक्षकों से विद्या प्राप्त करने की सलाह दी, बल्कि उन्हें अपने आस–पास के दुनिया के बारे मंञ भी समझने की सलाह दी। उन्होंने शिक्षार्थियों को समाज सेवा करने की सलाह दी और सामाजिक सुधार के लिए अपनी शक्तियों का उपयोग करने की सलाह दी। उन्होंने कहा है कि समाज सेवा सबसे बड़ा धर्म है और शिक्षा का सबसे उच्च उद्देश्य होना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन स्वतंत्र सोच और स्वाधीनता को प्रोत्साहित करता है। उन्होंने शिक्षार्थियों को सोचने की सलाह दी और खुद के विचारों का आधार बनाने की सलाह दी। उन्होंने कहा है कि हमें सोचने की स्वतंत्रता देने के लिए शिक्षा देनी चाहिए, न कि दिमाग में जो चलता है उसे स्वीकार करने के लिए। अंत में, स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन शिक्षार्थियों को आत्मनिर्भर बनाता है। उन्होंने बताया है कि आत्मनिर्भरता सबसे बड़ी शिक्षा है। यह उन्हें स्वयं के ऊपर भरोसा करने और स्वयं को विकसित करने की सलाह देता है। उन्होंने शिक्षार्थियों को अपनी भावनाओं, मनोवृत्ति, आदर्श और संस्कृति से जोड़ने की सलाह दी। स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शनों का मुख्य उद्देश्य समस्याओं का समाधान करने वाले जीवनी विकास के माध्यम से व्यक्तित्व विकास को बढ़ाना है। वे शिक्षार्थियों को उनके जीवन में सफलता पाने के लिए एक जीवनी मॉडल के रूप में खड़े होते हैं जो उन्हें समझाते हैं कि उनका जीवन कैसे बनाया जाना चाहिए।

इस प्रकार, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन उनके समग्र व्यक्तित्व से भरे हुए थे और उन्होंने शिक्षार्थियों को एक स्वस्थ और सकारात्मक जीवन के लिए संदेश दिया। उन्होंने शिक्षार्थियों को स्वतंत्र सोचने और स्वतंत्र

निर्णय लेने की सलाह दी जो उन्हें सफल बनाने के लिए आवश्यक है। वे यह सुनिश्चित करने के लिए शिक्षार्थियों को उनके अंदर के दुखों और खुशियों को समझने की सलाह देते थे ताकि वे अपने स्वयं के विकास में सफल हो सकें। उन्होंने शिक्षा का महत्त्व जोर दिया और बताया कि शिक्षा केवल एक व्यापक स्पंदन नहीं है बल्कि एक आवश्यकता भी है। उन्होंने शिक्षा को जीवन का आधार माना और इसे एक मार्गदर्शक के रूप में देखा। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन एक अद्‌भुत दिशा–निर्देशक है जो व्यक्तित्व विकास और सफलता की राह दर्शाता है। उन्होंने अनेक जीवनी मॉडल बनाए जो शिक्षार्थियों को उनकी सफलता की राह दिखाते हैं। उन्होंने शिक्षार्थियों को अपनी भावनाओं और आदर्शों से जोड़ने की सलाह दी।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन एक सकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाता है जो उन्हें स्वयं के ऊपर भरोसा करने की सलाह देता है। वे शिक्षार्थियों को समझाते हैं कि उन्हें स्वतंत्र सोचने और स्वयंत्रित होने की आवश्यकता है। उन्होंने शिक्षार्थियों को स्वतंत्र सोचने और स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शिक्षार्थियों को सफलता की राह दिखाता है। उन्होंने शिक्षा को जीवन का आधार माना और बताया कि एक व्यक्ति जब तक उसकी शिक्षा नहीं होती तब तक वह अपनी वास्तविक स्वभाव से दूर होता रहेगा। शिक्षा उसकी सोच, व्यवहार, नैतिकता और विकास के समग्र विकास में मदद करती है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के महत्व को बताते हुए उन्हें जीवन का आधार माना और उन्होंने बताया कि शिक्षा एक नहीं बल्कि अनेक रूपों में हो सकती है। उन्होंने शिक्षा को एक सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा और शिक्षार्थियों को जीवन में सकारात्मक सोचने की सलाह दी। वे शिक्षार्थियों को उनके स्वयं के ऊपर भरोसा करने की सलाह देते थे ताकि वे अपने जीवन को सफलता और खुशी सेवांछित परिणाम तक ले जा सकें।

वे शिक्षार्थियों के साथ एक संवाद करने की सलाह देते थे और उन्हें बताते थे कि वे अपने जीवन में क्या चाहते हैं और उन्हें कैसे हासिल कर सकते हैं। उन्होंने शिक्षार्थियों को संबोधित किया और उन्हें समझाया कि शिक्षा सिर्फ कक्षाओं में होने वाली एक गतिविधि नहीं है, बल्कि जीवन का एक समग्र अंग है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए कई तरीके अपनाए। उन्होंने अपनी शिक्षा दर्शन में नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी, नई सोच और समानता जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समाविष्ट किया। वे शिक्षा को एक दिशा–निर्देश तथा ज्ञान का स्रोत बताते थे।

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को एक उत्सव के रूप में देखा और उन्हें बताया कि शिक्षा एक अविरल अभिव्यक्ति है। वे शिक्षार्थियों को शिक्षा की सार्थकता और शिक्षा से प्राप्त होने वाले लाभों के बारे में बताते थे। इस तरह, स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा एक अनंत और अविरल प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है। उन्होंने शिक्षा को एक जीवन यात्रा के रूप में देखा और शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए विभिन्न उदाहरण दिए। एक उदाहरण के रूप में, उन्होंने एक शिक्षार्थी को बताया कि जीवन की यात्रा एक समंदर की यात्रा के समान है। जब हम समंदर पार करते हैं, तो हम नई दुनिया की ओर आगे बढ़ते हैं। वैसे ही, जब हम शिक्षा का सफर आरंभ करते हैं, तो हम नई दुनिया की ओर आगे बढ़ते हैं। यह सफर आनंददायक और स्वार्थ रहित होना चाहिए।

उन्होंने शिक्षार्थियों को नैतिक मूल्यों को समझाने के लिए भी प्रेरित किया। वे नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देते थे और शिक्षा के माध्यम से इन मूल्यों को समझाते थे। उन्होंने शिक्षार्थियों को समाज सेवा करने का प्रेरणा

दिया और सामाजिक जिम्मेदारी का महत्व समझाया। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा सभी के अनुभव और ज्ञान का एक संयोग है जो हमें जीवन में सफलता प्राप्त करने में मदद करता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा उस संयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है जो हमें जीवन के लिए तैयार करता है। उन्होंने कहा कि शिक्षा के माध्यम से हम अपने अन्दर के संस्कारों, नैतिक मूल्यों, उद्देश्यों और संजीवनी तत्वों को विकसित कर सकते हैं। शिक्षा दर्शन के रूप में, स्वामी विवेकानंद ने अनुभव, ज्ञान और धर्म को एक संयोग के रूप में देखा। उन्होंने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य हमें एक उच्चतर जीवन जीने के लिए तैयार करना होता है। इसके लिए, शिक्षा उन्हें दूसरों के लिए सेवा करने, नैतिक मूल्यों के प्रति समर्पण और स्वयं को विकसित करने की शक्ति प्रदान करती है।

उन्होंने शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए भी उदाहरण दिए। उन्होंने कहा कि जैसे चंद्रमा सूर्य की किरणों का उपयोग करके अपना प्रकाश फैलाता है, उसी तरह शिक्षा भी हमें उन्हीं स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करके अपनी प्रगति करती है। शिक्षा हमें समस्याओं का सामना करने, जीवन के निर्णय लेने और संज्ञानशील व्यक्ति बनने के लिए आवश्यक गुणों को स्थापित करती है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के साथ–साथ समाज सेवा का भी महत्व बताया। उन्होंने कहा कि समाज की सेवा न केवल हमें दूसरों की मदद करती है, बल्कि यह हमारी अंतरात्मा को भी शुद्ध और समृद्ध करती है।

उन्होंने व्यक्ति की पूर्णता के लिए अध्यात्म और आध्यात्मिक उन्नति का भी महत्व बताया। उन्होंने कहा कि धार्मिकता हमें न केवल उद्धार के मार्ग पर ले जाती है, बल्कि यह हमें उन अद्भुत गुणों से परिपूर्ण करती है जो हमें स्वर्ग में जाने के लिए उचित बनाते हैं।

उन्होंने शिक्षा के लिए संकल्प और समर्पण की भी महत्वता बताई। उन्होंने कहा कि शिक्षा के लिए सफलता की आवश्यकता होती है, हमें इसके लिए आगे बढ़ने के लिए संकल्प और समर्पण का भी सहारा लेना चाहिए। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा में समझदारी, विवेक, साहस, व्यवहारिक ज्ञान, उत्साह और सहनशीलता जैसे गुणों का विकास होना चाहिए। उन्होंने शिक्षा के महत्व को बढ़ावा दिया जो आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति को संभव बनाता है। इसलिए उन्होंने शिक्षा के लिए स्वयं को समर्पित करने और विवेकी और व्यवहारिक ज्ञान का विकास करने की आवश्यकता को बताया।

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को एक ऐसी शक्ति माना जो हमें सभी वर्गों में समानता की ओर ले जाती है। वे सामाजिक न्याय, विवेक, त्याग, धैर्य, संघर्ष करने की क्षमता और सामूहिक भावना जैसे गुणों को शिक्षा के माध्यम से विकसित करने की महत्वता बताते थे।

उन्होंने शिक्षा को सिर्फ अकादमिक ज्ञान के लिए नहीं बल्कि संस्कारों, वैचारिक विकास और मनोवैज्ञानिक विकास के लिए भी महत्वपूर्ण माना। उन्होंने शिक्षा को आत्मा के विकास तक पहुँचने का माध्यम माना था।

उन्होंने सफलता के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं जो इस प्रकार से हैं :– सफलता की दुनिया में पहुंचने के लिए, हमें कुछ नियमों का पालन करना चाहिए जो अपनी सफलता की गारंटी देते हैं। निम्नलिखित सुझावों का पालन करके आप अपने लक्ष्यों की ओर आगे बढ़ सकते हैं :–

1. उद्देश्य तय करें : जब तक आपके पास एक निश्चित लक्ष्य नहीं होता है, आप उसे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। एक अच्छा लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए, इसे बिना आपके बढ़ना मुश्किल होगा।
2. अध्ययन करें : अध्ययन से हमें स्वयं को बेहतर बनाने में मदद मिलती है जो हमें अधिक सफलता प्राप्त

करने में मदद करती है। यह आपको अपने क्षेत्र में नवीनतम तकनीकों, उत्पादों और रचनात्मक विचारों के साथ अवगत कराता है।

3. कठिनाई के सामने नहीं हारें : जब आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिनाई का सामना करते हैं, तो आपको कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। इससे बदले में अपनी दृष्टि से कठिनाइयों का सामना करें।
4. स्वास्थ्य रखें : स्वामी विवेकानंद सफलता के लिए सबसे पहले स्वस्थ रहने की जरूरत को महत्व देते थे। अच्छी सेहत न केवल शारीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी आपके जीवन का महत्वपूर्ण अंग होती है।
5. स्वयं को जानें : स्वामी विवेकानंद सफलता पाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आप अपने आप को जानें। आपको अपनी शक्तियों और कमजोरियों को जानना चाहिए ताकि आप इस आधार पर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।
6. निरंतर सीखते रहें : स्वामी विवेकानंद सफलता पाने के लिए निरंतर सीखते रहने की सलाह देते थे। आपको अपने कौशल को स्वस्थ रखने के।
7. ध्यान और मेधावी होना – स्वामी विवेकानंद ने सफलता प्राप्त करने के लिए ध्यान और मेधावी होने की जरूरत बताई। ध्यान और मेधावी होने से आप अपने लक्ष्यों के लिए ज्यादा समय और उत्साह रख सकते हैं।
8. स्वयं का विकास करना – स्वामी विवेकानंद ने समझाया कि सफलता के लिए स्वयं का विकास करना बहुत महत्वपूर्ण होता है। आप खुद के आत्मविश्वास को बढ़ा सकते हैं, नए कौशल सीख सकते हैं और अपनी सीमाओं को तोड़ सकते हैं।
9. सकारात्मक सोचना – स्वामी विवेकानंद ने समझाया कि सकारात्मक सोचना सफलता की राहत होती है। आपके विचार आपके कार्यों को प्रभावित करते हैं, इसलिए सकारात्मक विचारों को बढ़ावा देना आवश्यक है।
10. विवेकपूर्वक निर्णय लें : सफलता के लिए विवेकपूर्वक निर्णय लेना बहुत जरूरी है। आपको यह निर्णय लेना होगा कि आप क्या करना चाहते हैं, क्या आप अपने लक्ष्य के लिए पूर्ण समर्थ हैं और क्या आपके पास आवश्यक संसाधन हैं।
11. स्वस्थ जीवन शैली अपनाएं : स्वस्थ शारीरिक और मानसिक जीवन सफलता के लिए बहुत जरूरी होता है। आपको दिनचर्या में व्यायाम और ध्यान जैसी गतिविधियों को शामिल करना चाहिए।
12. अपने लक्ष्य को साधने के लिए कठिनाईयों का सामना करें : सफलता के लिए आपको अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए कठिनाईयों का सामना करना होगा। आपको अपने दृढ़ संकल्प और समर्थन के साथ संघर्ष करना होगा।
13. स्वयं के उन दुष्परिणामों से सीखें जो आपने अपने जीवन में अनुभव किए हैं : सफलता के लिए, आपको अपने असफलताओं से सीखना होगा। आपको अपनी गलतियों का सामना करना चाहिए और उन से सीखना चाहिए कि आप इनका समाधान कैसे कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शनों के अनुसार, शिक्षा का मूल उद्देश्य हमें स्वतंत्र विचार करने और समझने की क्षमता प्रदान करना है। उन्होंने शिक्षा को एक समग्र विकास की प्रक्रिया माना जहां विद्यार्थी न केवल ज्ञान के अधिकारी होते हैं बल्कि स्वतंत्र भी। उन्होंने शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया माना जिससे हम स्वयं के साथ–साथ अपने आसपास के समाज और दुनिया के बारे में भी समझ जाते हैं।

विवेकानंद के शिक्षा दर्शनों में समझ की महत्ता बहुत अधिक है। वे समझ के लिए शिक्षा को एक शक्ति मानते थे जो हमें समस्याओं का सामना करने में मदद करती है। इसलिए, उनके अनुसार शिक्षा को समझ के साथ अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के मूल उद्देश्य को व्यक्ति को स्वतंत्र विचार करने और समझने की क्षमता प्रदान करने से जोड़ा है। उन्होंने शिक्षा को एक जीवन शैली बनाने की बजाय एक शक्ति के रूप में देखा था जो मानव जाति को स्वतंत्र और उद्यमी बनाने में सक्षम होती है। उन्होंने शिक्षा को एक सफल जीवन के लिए एक अनिवार्य माध्यम माना।

विवेकानंद ने अपने शिक्षा दर्शन में जोर दिया कि शिक्षा व्यक्ति के मन को खोलने और समझदार विचारों को उत्पन्न करने के लिए होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि शिक्षा उस समय तक पूर्ण नहीं होती जब तक छात्र के मन में स्वतंत्र विचार और समझ नहीं होती। वह छात्र को अपने आप से पूछने और जाँचने की क्षमता प्रदान करती है कि उन्हें क्या सीखना चाहिए और क्यों। इसलिए, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन के अनुसार, शिक्षा उन्हें स्वतंत्र विचार और समझ की क्षमता प्रदान करनी चाहिए ताकि छात्र जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता सके।

विवेकानंद के शिक्षा दर्शन के अनुसार, शिक्षा को सिद्धांत, विचार, अनुभव और कार्य के संयोग के माध्यम से प्रदान किया जाना चाहिए। उन्होंने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को बढ़ावा दिया, जैसे अनुशासन, तकनीक, ध्यान और शारीरिक शिक्षा। उन्होंने शिक्षा को अंतर्ज्ञान और बाह्य ज्ञान के विशेष रूपों के साथ जोड़ा था। उन्होंने शिक्षा को विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता तक पहुँचाने वाला माध्यम बताया। संस्कृति के महत्व को स्वीकार करते हुए, विवेकानंद ने शिक्षा को संस्कृति और धर्म के साथ जोड़ा था। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से समाज की सेवा को बढ़ावा दिया और जनता के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए उन्हें उत्साहित किया।

इस प्रकार, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन व्यक्ति को विकासित बनाने, समझदार विचारों को प्रोत्साहित करने, उन्हें स्वतंत्र और उद्यमी बनाने और समाज की सेवा के लिए उत्साहित करने की समर्थ होसके। स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन शिक्षा का मूल उद्देश्य है व्यक्ति को स्वतंत्र विचार करने और समझने की क्षमता प्रदान करना बताते हैं। इसके साथ ही, उन्होंने शिक्षा का ध्येय होना चाहिए, आध्यात्मिक, मानवीय, सामाजिक और आर्थिक विकास का समन्वय भी बताया है।

उन्होंने शिक्षा को अन्तर्ज्ञान और बाह्य ज्ञान के संयोग के माध्यम से प्रदान करने के बजाय, इसे समझदार विचारों और संस्कारों के साथ संबोधित किया। वे शिक्षा को ऐसे उपकरण के रूप में देखते थे, जो आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक संचार के बिना व्यक्ति के विकास को पूरा नहीं कर सकते। विवेकानंद के शिक्षा दर्शन शिक्षा को समाज के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन बनाने का मार्ग दिखाते हैं। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से समाज को सकारात्मक परिवर्तन लाने, विभिन्न समस्याओं का समाधान करने, और समृद्धि और विकास को बढ़ावा देने की सलाह दी। वे यह भी मानते थे कि शिक्षा आर्थिक विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन यह

समाज के लिए नहीं होना चाहिए। वे शिक्षा के माध्यम से अधिकतम संभवता और आत्मविश्वास का विकास करने की सलाह देते थे। शिक्षा का ध्येय हमेशा सभी दृष्टि कोणों से समृद्धि और विकास के समन्वय को सुनिश्चित करना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन शिक्षा को समस्त व्यक्ति के अधिकार का एक संस्कृतिक समरसता के रूप में देखते हैं। उनकी शिक्षा दर्शन नए भारत के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान थे। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से लोगों के मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित किया। वे शिक्षा के माध्यम से समग्र विकास की अनुभूति को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक संसाधनों का उपयोग करते थे। इन सभी बातों के संयोग से, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन शिक्षा के महत्व को समझने में मदद करते हैं। उनका दृष्टि कोण आधुनिक जीवन में सफलता और समृद्धि प्राप्त करने के लिए स्वामी विवेकानंद शिक्षा को एक महत्वपूर्ण उपकरण मानते थे। वे समाज के सभी वर्गों के लोगों को शिक्षा का अधिकार प्रदान करने के लिए लगातार लड़ते रहे। उन्होंने संसाधनों को उचित रूप से उपयोग करने के साथ–साथ शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए नए विचारों की खोज की।

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन के अनुसार, एक शिक्षित व्यक्ति को स्वतंत्र विचार करने और अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर प्रगति करने की क्षमता होती है। वे शिक्षा को एक ऐसी शक्ति मानते थे जो लोगों को जीवन में सफलता और समृद्धि की ओर ले जाती है। उन्होंने सभी लोगों के लिए शिक्षा के अधिकार को प्राथमिकता दी। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के महत्व को समझाने और शिक्षा के माध्यम से समग्र विकास को प्रोत्साहित करने के लिए नए विचारों की खोज की। वे शिक्षा को समग्र विकास के समन्वय के रूप में देखते थे, जिसमें आध्यात्मिक मानवीय मानवीय, सामाजिक और आर्थिक विकास सहित होते हुए एक पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। उन्होंने समाज में अन्याय, गरीबी और अंधविश्वास के मुद्दों से निपटने के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण उपकरण माना था।

स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण से, एक शिक्षित समाज उसके सदस्यों के व्यक्तित्व का विकास करता है, जो फिर समाज के समग्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण होते हैं। वे शिक्षा को एक समान मानक द्वारा सभी वर्गों के लोगों के लिए उपलब्ध कराने के लिए लगातार लड़ते रहे। उन्होंने शिक्षा को ऐसे माध्यमों के द्वारा प्रदान करने की सलाह दी जो सभी वर्गों के लोगों तक पहुंच सके। उन्होंने शिक्षा को ऐसी शक्ति मानी जो समाज में बदलाव को लाने में सक्षम हो। स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन समाज के विकास के लिए आधारभूत हैं। उन्होंने शिक्षा को जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बनाने की सलाह दी और लोगों को शिक्षा के माध्यम से समग्र विकास तथा समृद्धि के लिए प्रोत्साहित किया। वे शिक्षा को समानता, भाईचारा और सहयोग के भाव के साथ समग्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण मानते थे।

स्वामी विवेकानंद एक महान दार्शनिक और शिक्षाविद थे। उनके द्वारा उपदेश दिए गए शिक्षा दर्शन मानव जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं। संस्कृति और विद्या के बीच स्वामी विवेकानंद एक मजबूत संबंध बनाते हैं। उन्होंने कहा था कि 'जब तक हम अपनी संस्कृति को जानते नहीं हैं और उसके साथ नहीं खड़े होते हैं, हमें अपनी संस्कृति का विकास नहीं हो सकता।'

संस्कृति और विद्या दोनों ही एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। संस्कृति विद्या का आधार है जो हमें

अपनी वास्तविक वास्तविकता से रूबरू कराती है। विद्या हमें संस्कृति के विकास के लिए जरूरी ज्ञान, समझ और जागरूकता प्रदान करती है। उन्होंने बताया की दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे होते हैं। स्वामी विवेकानंद ने संस्कृति को अपनी शिक्षा दर्शन के मध्यम से बढ़ावा दिया। उन्होंने संस्कृति की महत्ता बताई और संस्कृति को बचाने के लिए विद्या को भी संस्कृति के साथ जोड़ा जाना अत्यंत आवश्यक है।

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन ने संस्कृति और विद्या के बीच एक मजबूत संबंध को स्थापित करने का उल्लेख किया है। उन्होंने संस्कृति को जीवन का मूल आधार माना था, जो विद्या के माध्यम से संजाग्रत होता है। उन्होंने विद्या को संस्कृति के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा। संस्कृति भारतीय जीवन और विचार धारा का मूल आधार है। यह समृद्ध धार्मिक और दार्शनिक विरासत का प्रतिनिधित्व करती है और इससे व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं में संजाग्रत होता है। संस्कृति में उपलब्ध विभिन्न ज्ञान और विद्या के क्षेत्र जैसे कि वैदिक ज्ञान, योग, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, गणित आदि ने भारतीय सभ्यता को समृद्ध बनाया है। इसलिए, स्वामी विवेकानंद ने विद्या को संस्कृति से जुड़ा एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा था। विवेकानंद ने शिक्षा के महत्व को जागृत करने के लिए भारतीय संस्कृति को महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा था। उन्होंने कहा था कि संस्कृति विद्या के स्रोत के रूप में काम करती है और विद्या संस्कृति को संबोधित करती है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को उत्कृष्टता के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में भी देखा था।

विवेकानंद ने संस्कृति के महत्व को दिलाया और उसे संस्कृति शिक्षा के समन्वय में लाने के लिए उन्होंने एक नया शिक्षा प्रणाली का प्रस्ताव किया था। इस प्रणाली का मूल उद्देश्य था कि संस्कृति और विद्या के बीच एक मजबूत संबंध बनाया जाए। उनके अनुसार, संस्कृति विद्या के स्रोत हैं और विद्या संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती है। स्वामी विवेकानंद ने संस्कृति और विद्या के बीच के संबंध को बहुत महत्वपूर्ण माना था। उन्होंने संस्कृति को शिक्षा के स्रोत के रूप में देखा था, जो विद्यार्थी को आध्यात्मिक, मानवीय, सामाजिक और आर्थिक विकास की जानकारी प्रदान करती है। संस्कृति में आध्यात्मिकता, धर्म, नैतिकता, ज्ञान, कला, विज्ञान और तकनीक के संगम को दर्शाया गया है। उन्होंने संस्कृति को एक ऐसे शक्तिशाली और उपयोगी उपकरण के रूप में देखा था जिससे विद्यार्थी का व्यक्तित्व विकसित होता है।

विद्या अधिकार है जो उत्पन्न होता है संस्कृति से । उन्होंने संस्कृति के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक, मानवीय, सामाजिक और आर्थिक विकास होना होता है। संस्कृति विद्यार्थी को संज्ञानशील और समझदार बनाती है और उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान निकालने की क्षमता प्रदान करती है। स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण से, संस्कृति और विद्या एक दूसरे के सम्बंधों के बारे में सोचना आवश्यक है। उन्होंने विद्या को संस्कृति का एक अंग माना था, जो विद्यार्थियों को संस्कृति के आधार पर शिक्षा देता है। संस्कृति के मूल्यों, नैतिकता और आध्यात्मिकता को समझने से, विद्यार्थी समझदारी से अपने कामों को संचालित कर सकते हैं। इसके अलावा, संस्कृति की विभिन्न पहलुओं से संबंधित विषयों में शिक्षा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना भी महत्वपूर्ण है। जैसे ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद, और भारतीय इतिहास आदि। ये विषय आपस में जुड़े होते हैं और एक विद्यार्थी को उनका अध्ययन करने से न केवल उनका समझाव बढ़ता है बल्कि उसे अपनी जीवन शैली में भी लाभ प्राप्त होता है।

स्वामी विवेकानंद एक महान भारतीय धर्म गुरु, जिन्होंने अपनी शिक्षा दर्शन के माध्यम से लोगों को ज्ञान

और समृद्धि की ओर प्रेरित किया। उनका मत था कि शिक्षा का महत्वपूर्ण तत्त्व यह है कि यह व्यक्ति को आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और स्वतंत्रता देता है। स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा व्यक्ति को सिर्फ ज्ञान नहीं देती, बल्कि उसके आत्मविश्वास, स्वाधीनता और स्वतंत्रता का विकास भी करती है। उनके अनुसार, यदि व्यक्ति को सिर्फ ज्ञान दिया जाए और उसे उसकी स्वतंत्रता नहीं दी जाए, तो उसे आधुनिक दुनिया में असफलता का सामना करना पड़ सकता है।

शिक्षा द्वारा व्यक्ति को आत्मसम्मान और स्वाधीनता दी जाती है, जो उसे अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में सफल होने की सामर्थ्य प्रदान करता है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के इस महत्वपूर्ण तत्त्व को जागृत करने की महत्ता को उत्कृष्टता के साथ समझाया था। शिक्षा का महत्वपूर्ण तत्त्व हमारी आत्मा का विकास है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को आत्मविकास का एक माध्यम माना और यह माना कि शिक्षा से हमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और स्वतंत्रता मिलती है। यह हमारी प्रतिभा को उद्धृत करता है और हमें एक सफल और समृद्ध जीवन जीने में मदद करता है।

स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट किया कि शिक्षा से सिर्फ अधिगम या ज्ञान प्राप्ति होना चाहिए, बल्कि शिक्षा से हमें अपने आप को पूरी तरह से विकसित करना चाहिए। वह शिक्षा का महत्वपूर्ण तत्त्व है क्योंकि यह हमें अपनी सीमाओं से पार करने और अपने सपनों को पूरा करने की स्थिति में ले जाता है।शिक्षा से हमें अपने आप में विश्वास, संघर्ष और उत्साह की भावना देखने को मिलती है। हमें उन संघर्षों से निपटने की क्षमता मिलती है, जो जीवन में आते हैं और हमें बाधाओं से लड़ने की ताकत देती है। शिक्षा से हमें अपने आप में आत्मसम्मान का एक तूफानी स्वरूप मिलता है जो हमारे जीवन को सुखमय बनाने में मदद करता है।

संदर्भ ग्रंथ की सूची :-

1. **राजयोग :** स्वामी विवेकानंद द्वारा लिखित एक पुस्तक है जो उनके शिक्षा दर्शन को विस्तार से समझाती है। इस पुस्तक में उन्होंने राजयोग के सिद्धांतों को विस्तार से वर्णन किया है।
2. **ज्ञानयोग :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने ज्ञानयोग के सिद्धांतों को विस्तार से बताया है। उन्होंने यह भी बताया है कि ज्ञान और कर्म योग का अन्तर क्या है।
3. **भक्तियोग :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने भक्ति और भक्तियोग के सिद्धांतों को विस्तार से बताया है।
4. **उद्घोषः-** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने धर्म, संस्कृति और समाज के विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।
5. **प्रबुद्ध भारत :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने भारत के संस्कृति और धर्म के प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त की हैं।
6. **संपूर्ण विवेकानंद वंशावली :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद जी के जीवन पर बेहद रोमांचकारी एवं प्रेरणादायक ग्रंथ है।
7. **वेदांत दर्शन का प्रभोध :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने वेदांत दर्शन के सिद्धांतों को बताया है।
8. **संकल्प का महत्त्व :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने संकल्प के महत्व को बताया है और बताया है कि इससे कैसे जीवन में सफलता प्राप्त की जा सकती है।
9. **जीवन के उद्देश्य :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने जीवन के उद्देश्य के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं।
10. **अध्यात्मिक जीवन की महत्त्वपूर्ण बातें :** इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद ने अध्यात्मिक जीवन के महत्त्वपूर्ण बातों को बताया है। यह पुस्तक उन लोगों के लिए उपयोगी हो सकती है जो अपने जीवन में अध्यात्मिकता को अपनाना चाहते हैं।

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रकाशित

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

Impact Factor : 4.533

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed International Research Journal

Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

विशेष :-

आलेख भेजने की अन्तिम तिथि :- प्रत्येक माह की 13 तारीख

सहयोग राशि भेजने की अंतिम तिथि :- प्रत्येक माह की 20 तारीख

निर्धारित तिथि के बाद प्राप्त पेपर पर विचार नहीं किया जाएगा।

आपको अगले अंक के लिए पुनः सारी प्रक्रिया करनी होगी।

शोध आलेख भेजने के लिए मेल आईडी : grngobwn@gmail.com

नियम एवं शर्तें :

1. शोध आलेख की सीमा 1500-2000 शब्दों की है। पेपर के टाइटल के नीचे अपना नाम, पता, मोबाईल, मेल आईडी अवश्य लिखें इसके अभाव में आपका पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
2. साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित किसी भी विषय पर शोध आलेख भेज सकते हैं। शोध आलेख कृतिदेव 10, मंगल फॉन्ट में एमएस वर्ड फाइल में टाईप करवाकर ही भेजें। पीडीएफ या हाथ से लिखा पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
3. शोध आलेख केवल अपनी ईमेल से ही भेजें क्योंकि हम तमाम प्रकार की जानकारी जिस मेल से हमे पेपर प्राप्त होता है उसी पर देते हैं व्यक्तिगत फोन करके नहीं।
4. एक से अधिक बार भेजे गए शोध आलेख/अशुद्ध आलेख स्वीकृत नहीं होंगे। सम्पादक मंडल का निर्णय सर्वमान्य एवं अन्तिम होगा।
5. अशुद्धियों, प्लेगरिज़्म एवं मौलिकता के लिए आप स्वयं जिम्मेदार होंगे। आलेख प्रूफ रीडिंग के बाद भेजें, प्रकाशन के बाद किसी भी प्रकार का सुधार संभव नहीं होगा।
6. पत्रिका की हार्ड/प्रिंट कॉपी+ऑनलाईन के लिए प्रकाशन/सहयोग राशि 1300/- देनी होगी। पीडीएफ+ऑनलाईन के लिए सहयोग राशि 600/- है।

सेमिनार/संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध आलेखों को विशेषांक रूप में प्रकाशित करवाने के इच्छुक व्यक्ति/संस्थान सम्पर्क करें-8708822674

प्रधान संपादक एवं सचिव :
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

संपादक एवं निर्देशक :
डॉ. रेखा सोनी

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115